Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

विप्रलंभ श्रृंगार संबंधी राजस्थान के लोकगीत

विप्रलंभ-श्रृंगार के लोकगीतों का सामान्य विवेचन -

सुख दु:ख के धूपछांही ताने-बाने में आंख-मिचौनी खेलती कभी संयोग तो कभी वियोग, कभी हास तो कभी अश्रु, कभी हर्ष और कभी विषाद, यही मानव-जीवन की चिरन्तन कहानी है। संयोगमयी घड़ियों में आनंद का अनिवर्चनीय स्त्रोत हृदय में उल्लास एवं जीवन-शक्ति का संचार करता है तो वियोग की विरहाश्रुलड़ियां जीवन को मृतसा बना देती है। परन्तु सृष्टि का क्रम अनादि है। संयोग-वियोग सनातन है, इस विश्वास पर जग जी रहा है। सृष्टि में दिन और रात, प्रकाश और अंधकार दोनों का महत्व है। उसी प्रकार वियोग वेदना का भी महत्व है। वेदना ही जैसे आदि कविता की कहानी है। क्रोंच-मिथुन में से एक को काल कवलित और दूसरे को वियोग-विह्वल देखकर आदि कवि का शोक श्लोक-रूप में परिणत हो गया था। उस क्षण ने बाल्मीकि को नवजीवन देकर अमर कवि बना दिया। कवि समाज में विप्रलम्भ को पर्याप्त महत्व दिया गया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि पंत ने कहा है -

`` वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ।।

प्रेम के अश्रुमय स्वरूप पर सब रीझे हैं। किसी ने कहा - `` बनले वियोग का अभ्यासी, इच्छित हो यदि परिपूर्ण प्रेम। और किसी ने कहा - " Our sweetest songs are those, that tell of sadest thought. "

विरह भाव शाश्वत है। रविबाबू ने ठीक ही कहा है कि यदि मनुष्य वियोग और वेदना से विह्वल न होता तो वह भगवान के द्वार क्यों खटखटाता है ? उन्होने यह भी कहा है - `` आगार माझे विरहणि नारी `` अर्थात् मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी बैठी है जो अपने दु:ख का गीत सुनाया करती है। यह विरहिणी मात्र उन्हीं के हृदय में आसीन नहीं वरन् सभी कवियों में इसका चिर निवास है। महादेवी की आत्मा विरह साधना में कह रही है -

" एक करुण अभाव में चिर, तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शतशत् ।
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में
कौन तुम मेरे हृदय में । "

और फिर -

" हो गई आराध्यमय मैं, विरह की आराधना ले ।"

सूर की गोपियों ने कहा - " ऊधो विरहहु प्रेम करे ।"

और कबीर ने तो यहाँ तक कह दिया -"जेहि घर विरह न संचरे, सो घट जान मसान "

' विरह ' जैसे क्रूर कठोर भाव में ऐसी कौनसी विराट् चेतना स्पंदित है जिसने अपनी इतनी महत्ता पाई है । कुछ लोगों की मान्यता है कि वियोग हो जाने पर हृदय के पनपते प्रेम में शनै: शनै: न्यूनता आती रहती है, किन्तु यह निरीधारणा मात्र है । यह कि भी उन्हीं के लिए है जिनके लिये प्रेम मौसमी सुमनों के सदृश होता है । परन्तु जिनका हृदय सच्चे प्रेम से अभिभूत है वहां प्राणों का रुदन, क्रंदन प्रतिपल स्नेह का सिंचन करता है । संयोगावस्था में प्रेमी अपने प्रिय के अस्तित्व से पराभूत होता है । उसे अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध नहीं होता किन्तु वियोगजन्य परिस्थितियों में अपने आपको और प्रिय को पूर्णरूप में पहचानने की स्थिति लाती है । वस्तुत: प्रेमयोग की सिद्धि इसी विरह-साधना के द्वारा प्राप्त की जा सकती है । ठीक ही तो कहा गया है कि विरह प्रेम का तप्त स्वर्ण है । वेदना की अग्नि में तपकर प्रेम की मलिनता गल जाती है और जो कुछ रह जाता है वह शुद्ध रूप । अन्तर्दाह तो प्रेम की कसौटी है । प्रेम अन्त:करण की शक्तियों से प्रभावित होकर अधिक गहन, घनीभूत एवं शाश्वत् बन जाता है । रुद्धभावनायें रुदन में जब प्रतिफलित हो उठती हैं, तब वेदना-प्रस्फुरण सात्विक वृत्तियों को महिमामयी कर देती है । बाह्य-सामीप्य दूर होता जाता है तो हृदय-मिलन प्रगाढ़तम होता जाता है । कैसी प्रगाढ़ रसानुभूति है ।

:: ३ ::

संयोग श्रृंगार के सदृश ही वियोग श्रृंगार का विवेचन भी साहित्याचार्यों ने किया है। नायक-नायिका के लिये अभीष्ट की अप्राप्ति ही विप्रलम्भ अथवा वियोग है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार - ``अनुराग के उत्कट होने पर भी प्रिय के संभोग का अभाव ही विप्रलम्भ कहलाता है।`` भानुदत्त ने विषय को और भी स्पष्ट करते हुये लिखा है कि युवा और युवती की परस्पर मुदित पंचेन्द्रियों के पारस्परिक संबंध का अभाव अथवा अभीष्ट की अप्राप्ति ही विप्रलम्भ है। इसमें रति भाव की विद्यमानता आवश्यक मानी गई है। संस्कृत शास्त्र में संयोग और वियोग का आधार सामीप्य अथवा पार्थक्य या उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति को न मानकर, सुख और दुःख माना गया है। विप्रलम्भ के चार प्रकारों - पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुण का उल्लेख किया गया है। वियोग के लिये पहले योग आवश्यक है, इसी प्रकार `मान` को तो लगभग संयोग की एक-स्वरता को तोड़ने के लिये, मनोदशा का एक परिवर्तन मात्र, संयोग का ही एक अंग माना गया। जो भी हो मनोविज्ञान की दृष्टि शास्त्र की निर्दोषता सिद्ध करती है। इतना अवश्य है पूर्वानुरागवती, खंडिता अथवा विप्रलब्धा की मनोदशा में तीव्रता तो किसी प्रकार कम नहीं होती किन्तु इसके साथ ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि गांभीर्य की अपेक्षाकृत `प्रवास` से न्यूनता होती है। अस्तु इस प्रकार सबकी ही अपने-अपने स्थान पर अपनी निजी महत्ता है।

लोकगीतों में संयोग की अपेक्षा विप्रलम्भ-श्रृंगार की समस्त अन्तर्वेदना अति सूक्ष्मता से मुखरित हुई है। लोकगीतों की नारी के लिये पति के वियोग का कारण किसी दुर्वासा का श्राप न होकर प्रकृति देवी की इस प्रदेश पर अप्रसन्नता ही मुख्यतः रही है। एक ओर तो बालूकामय अनन्त मरुस्थल है तो दूसरे छोरपर अरावली की पथरीली पहाड़ियां। राजस्थान का जनजीवन श्रमशील और मुख्यतः वीर योद्धा का रहा है। यहां के जीवन में विवाह जितना स्वभाविक है ठीक उतना ही स्वभाविक विवाह के पश्चात् सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने के लिए नौकरी के लिये बाहर जाते रहना है। मध्ययुग में यहां के वीर प्रायः युद्धस्थल में अपने क्षात्रिय-जीवन को

सार्थक करने के लिए चले जाया करते थे । अथवा राजाजी की चाकरी अथवा व्यवसाय हेतु उन्हें अधिकांशत: अपने घर से बाहर ही रहना पड़ता था । आज भी गांवों की यह स्थिति है कि यहां के शेठ-साहूकार घरों पर ~~कलिकाः~~ पत्नियाँ छोड़कर सुदूर नगरों कलकत्ता, बम्बई, आसाम में व्यवसाय करते हैं । वर्ष में एक या दो बार कुछ समय के लिये आकर फिर दीर्घ बिछोह की असह्य वेदना छोड़कर चले जाते हैं । लगभग यही अवस्था राजस्थान के सैनिकों की है जिन्हें देश के सुदूर स्थानों पर तैनात रहना पड़ता है । अर्धांगिनियां नितांत ~~एक~~ एकाकी रह जाती है । हृदयों में हूक उठती है । हृदय की पीड़ा आंखों में सावन-भादों के बादल बनकर बरसने लगती है । घहराते हुए अंधकार में चेतना चीत्कार कर उठती है । कहा गया है कि ``ग्राम्य वधू का घूंघट `` ही तो पुरवाई के मेघ सा श्यामल है, मेघ बरसने पर जैसे धरती भींगती है, घूंघट तले भीग रहे है वधू के गाल । लोकगीत आंसुओं को झट देख लेता है स्वरों के पीछे एक चित्र उभरता है । चित्र दबता नहीं, दूर दिगंचल तक फैले ऊंचे नीचे धान के खेत इस चित्र में प्राण-प्रतिष्टा कर देते है । कौन उस थकी हुई कुलवधू को बताये कि उसका प्रियतम कब लौटेगा ? किसी भी काम में मन नहीं लगता । "कम्पित हाथों से वह भूमि पर कुछ रेखाएें अंकित करती है । उन रेखाओं को गिनती है । यह कैसा हिसाब लगाया जा रहा है ? इस बार रेखाएें धोखा दे गई । फिर से रेखाएें अंकित कर दी गई । अब संभवत: रेखायें मन की बात बतादें । प्रियतम आज आवेंगे या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर रेखाओं को देना ही होगा, पर रेखायें जोर जबरदस्ती सहन नहीं कर सकती ।``[१] देवेन्द्र सत्यार्थी ने यहां वेदना से क्लान्त-प्रान्त विरहिणी का कितना सजीव चित्र उपस्थित किया है ।

वियोग के एक-एक लोकगीत को उठाकर देखें, उसके आत्म-प्रदेश में विचरण करें तो पायेंगे कि उनमें मार्मिकता भरी पड़ी है । वियोग-पक्ष में यद्यपि पति-पत्नी दोनों की कथा को गाया गया है किन्तु जितना विरह पत्नि का विभिन्न स्त्रोतों से उमड़ चला है उतना पति का नहीं । विरह जनित मन

---

१. बेला फूले आधी रात - पृ० १०

की वेदना हृदय को कितना मथ डालती है, वह वियोग के प्रत्येक लोकगीत में विशदता से मुखरित है। राजस्थानी नारी के हृदय में प्रथम तो संयोगावस्था में ही वियोग की आशंका करुणा का प्रसार कर देती है। पति के परदेश जाने के समय ही अनुमानित विरह दशा में गीतों का प्रारम्भ हो जाता है। न जाने के लिए कितने अनुरोध किये जाते हैं, पर पति का हृदय न माने, तब भी आजीविका के लिए गमन तो करना ही पड़ता है। ``मोरसी कुरलाती' को वह छोड़कर चला जाता है। पत्नी के लिए संसार सूना हो जाता है और फिर फिर विरहणी की अनेकानेक सूक्ष्मतम मनोदशायें गीतों में ढल जाती है। गीतों से हृदय-प्रदेश तो गूंजता ही है समस्त बाह्य वातावरण भी रंजित हो उठता है। विरह का कार्य पदा अगाया, अछूता नहीं रह पाता। उसके समक्ष प्रियतम की आकुल प्रतीक्षा दीर्घ पहाड़ सी अवधि में आलोड़ित विलोड़ित होती है। प्रेम में निमग्न कहीं यौवन ढलने की चिन्ता, कहीं प्रिय प्रतीक्षा में कागों का उड़ाना, कहीं विरह उतप्त अनुभूति में ``ओल्यूं'' सपनों, चौमासों, बारहमासों और 'संदेशो' तथा 'सुमन विचार' आदि अनेक गीत जन्म लेते हैं। विरह में कभी अत्यंत विनम्र हो जाना, कभी दीन हीन होकर शीघ्र से शीघ्र प्रिय को बुलाना, कभी प्रेमानुरागकलित हृदय से उपालम्भ देना और समस्त ऋतु, त्योहारों के द्वारा उद्दीप्त पीड़ा से आहत होना, स्वप्न में दर्शन एवं हिचकी का आना, आंखें तथा बाहु का फड़कना, कभी मिलन के उल्लसित क्षणों का स्मरण हो आना, कभी बैरिन सौत का स्मरण आना, इन सबको राजस्थानी लोक गीतों ने अपने में संजोया है।

राजस्थानी श्रृंगारिक लोकगीतों में अनेक लोकगीत ऐसे मिल जाते है जिनमें पति को किसी प्रकार कुछ देर और अपने पास रोके रखने के लिए पत्नी न जाने कितनी निष्फल 'मिन्नतें' करती हैं। पति और पत्नी अपने निश्छल प्रेम में मग्न अपनी रातें बिताते हैं तभी बीच में 'चाकरी का परवाना' उनके प्रेम-जगत में विघ्न डाल देता है। पति को तो कर्तव्यच्युत होना मरण सदृश लगता है और इधर नायिका न जाने कितनी कसमों का अम्बार लगा देती हैं पर हाथ कुछ नहीं आता। पति के परदेश जाते समय के एक गीत में प्रियतम की विदाई पर प्रेयसी की हृदय-विदारक व्यथा व्यक्त हो रही है।

नायिका की मनोस्थिति का सांगोपांग चित्र अंकित हो जाता है । भावी विरह की आशंका रुपी काली घटाओं का ~~कि~~ कितना हृदयस्पर्शी दृश्य है -

'' इक थंभियो ढोलामहल चिणाय,
बीच - बीच राखो बारी ।
बादल वरणी सेज बिछाय राजींदा ढोला
हाथा ने ढोलावुं हूं तो वीजणो, जी म्हारा राज
सूता हंजामारु सुखभर नींद
इतरे में राईको हेलो मारियो जी म्हारा राज ।''[१]

आनंद - निमग्न प्रेयसी पति को बीजना (पंखा) झल रही थी । संयोगिनी ने अपने प्रिय से ~~इक~~ ''एक थंभियो'' महल बनवाने की आकांक्षा व्यक्त की थी । चारों ओर बने गवाक्षों में सजाये दीपकों के उज्जवल प्रकाश से रंजित सेज पर प्रियतम सुख भरी नींद सो गया था । इतने में ऊंट वाले की आवाज आई । बुलाने पर ज्ञात हुआ कि राजाजी ने पति को कर्तव्य पूर्ति के लिए राजधानी में बुलाया है । सुनकर नायिका के हृदय पर वज्राघात होता है । वह अन्य परिजनों के नाम ले लेकर कहती है - इस बार तो देवर, जेठ अथवा ससुर को भेज दो, किंतु कर्तव्यपरायण पति नहीं मानता । तब वह वेदना-कलित हृदय लिये ननद के पास जाती है, वहां से भी हताशा-निराशा मिलती है । अंत में सुन्दरी ने सवार होते पति के घोड़े की लगाम थामली और कातर मयूरी की तरह आंसू ढलकाने लगी । पर उसका प्राणप्रिय भी क्या कर सकता था ? वह उसे हृदय से लगाकर रुमाल से आंसू पोंछ कर हंसते-हंसते सीख (विदा) देने को कहता है । 'गोरीधण' के हृदय की उठती पीर चरम सीमा पर पंहुच जाती है और वह पति से कहती है -

'' सीखड़ली हंजामारु दीवी रे नहिं जाय
छाती तो भरीजे, हिवड़ो ऊबके जी म्हारा राज ।''

सपना गीत प्राय: वियोग पक्ष को लिये हुए होते हैं किन्तु एक गीत में पति के जाने के भय से नायिका सपने में आग्रह करती है कि बिना मिले मत

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ४३

जाना - मारु जी रात ने सुपने में बेसर मुख से -
बोलीजी, ओल्युं थारी आवै ।[१]

और कभी पत्नी ने यह भी कहा था -

" मैं रे बजाऊं थारी चाकरी जी ढोलो, जो थे ले चालो म्हांने साथ
उगता सूरज चाकर मैं बणूंजी ढोला
मलमल देऊली न्हवाय ऊभी बजाऊं थारी ।"

किंतु पति के लिए यह संभव नहीं था । उसकी आग्रह भरी अर्ज पर पति को ध्यान देते न देखकर वह आकुल हो उठती है । मानिनी विनम्र आग्रह को छोड़ हठ पर उतर आती है और दृढ़ स्वर में कह देती है -

" साजन चाल्यां चाकरी कांधे धरी बंदूक ।
के तो लारै ले चलो, कै करदो, दो टूक । ।"

यह जिद पुरुषों के हृदय में पीड़ा का वपन तो अवश्य कर जाती है, पर आग्रह की स्वीकृति की गुंजाइश कहां ? टप-टप करती घोड़ों की टापों के नीचे संयोगिनी की आशायें एक एक करके कुचल दी जाती हैं और रह जाती है केवल वेदना की काली अमावस्या । बस फिर तो उसके मानस की विरह-व्यथा सजीव हो उठती है ।

' पीपली ' गीत में वृक्षों के साहचर्य से वियोग का उत्तम परिपाक हुआ है । पीपली स्वयं वह नारी है जिसके पति विदा-वेला में घर के आंगन में 'पीपली' का वृक्षारोपण कर गये थे अर्थात् उसके हृदयांगन में प्रेमांकुर डालकर दूर-प्रदेश चले गये थे । अब वह वृक्ष बड़ा होकर प्रगाढ़ प्रेम के रूप में पल्लवित हो गया है । प्रिय की अनुभूति उसे व्यथित कर देती है । प्रतीक्षा करते-करते अति दीर्घ समय हो जाने पर भी पति के न आने पर उसका हृदय इन उद्गारों में व्यक्त हो जाता है -

" बाय चाल्या छा, भंवरजी पीपली जी ।"[२]

कितनी अभिलाषायें थीं, किंतु बेचारी नव-वधू के अरमानों को उसके पति ने कभी पूरा नहीं किया । परोक्ष में ही उलाहना देती हुई कहती है,

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ४४
२. परिशिष्ट गीत संख्या ४५

तुम कभी देवताओं का प्रसाद नहीं लायें, न कभी तुमने मेरी मनवारें की, न कभी मन की बातें पूछी, न कभी खाट बुनने की रस्सी लाकर खाट बुनी, न कभी उस पर दोनों हिलमिलकर सो ही पाये । व्यंग्य की खटाई से प्रेम का रस और भी निखर उठता है । अकुलाई वियोगिनी आगे कहती है - तुम्हारे मां और बाप धन के लोभी थे । उन्होंने यह न सोचा कि विरहिणी अपने प्रिय के प्रवास पर काग उड़ाया करेगी और दीर्घ प्रतीक्षा में जला करेगी । प्रतीक्षा करती हुई प्रिया इस गीत में पति को घर लौट आने को कहती है । शीघ्र बुलाने का उसे एक उपाय भी सूझ गया । यह जानकर कि - `` दो रोटी के कारणे म्हारो पिउ गीयो परदेस``, वह चरखा और सामग्री लेकर आजीविका का प्रश्न हल करने की बात कहती है । यह भी याद दिला देती है कि यौवन के विकासकाल में तुम्हारा परदेश रहना अच्छा नहीं । यह तो ठीक वैसा ही है जैसे श्रावणमास में खेती बोई भादवे में निराई जायं । अन्त में वह कहती है कि ``ऊजड़ खेड़े में वास फिर भी हो सकता है, निर्धन के यहां धन भी आ सकता है पर व्यतीत हो जाने वाला यौवन-पुन: नहीं आयेगा । वह उसे बदली की घूमती-फिरती छाया के सदृश अस्थिर मानती है । आगमन की हर आशा के दीपक के बुझ जाने पर अभावों के संसार में अब रह जाती है मात्र प्रिय की स्मृति और उच्छ्वास से भरे आंसू । प्रिय का स्मरण, चिन्तन, प्रेम की अनगिनत स्मृतियां, पीड़ित हृदय का अवलम्ब और संतोष रह जाता है । इस मनोव्यथा को व्यक्त ~~करके~~ करने के लिये लोकगीतों ने ``ओलूं`` (याद) को चुना है । राजस्थानी लोकगीत के इस शब्द में सब कुछ समाहित हो जाता है । पति के परदेश होने पर सहेलियां, ननद के पीहर आने पर उसकी भोजाइयां और पति का संदेश आगमन या न आने पर प्रियतमा `ओलूं` गा-गाकर भावोच्छ्वासों को हल्का किया करती है । हृदयस्पर्शी राग और सजीव सरलता के दृश्य साकार हो उठते है । विरहणी के भावों की हूक इस प्रकार फूट निकलती है -``म्हारा राजीड़ा री छिन छिन ओलूं आवे ।``[१] प्रियतम के बिना उसके प्रत्येक कार्य की क्या सार्थकता ? लोकगीत की नारी के दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य के उत्साह, उल्लास के पीछे प्रिय के प्रगाढ़ अनुराग

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या ४६

की भावना सम्बद्ध थी । प्रिय भी तो ऐसे थे कि उसके प्रत्येक कार्य में उसकी छाया से तंग रहते थे । पनघट पर, भैंस दुहने के समय, अब कौन प्रणय-भीने भावों से उसके कार्यों में सुहागा भरे । रंगमहल में सूनी-सूनी सी नितान्त एकाकी उसका हृदय भर जाता है और -``टप-टप टपके नैण दीरघड़ा, हिवड़ो भर-भर आवे ।`` प्रिय बिन उसको क्या अच्छा लग सकता है ? तभी तो वह कह रही है -

`` थांरी ओलुं घणी आवे म्हारा राज,
जी नींद नहीं आवे म्हारा राज,
म्हांनें धान नहीं भावे जी राज ।``

ऐसी अवस्था में उसकी शारीरिक दशा का अनुमान``फुक फुक फोला खाय`` वाली स्थिति से हो जाता है । उक्त गीत में विरहणी की बहुत दयनीय दशा है -`` आ तो किग्गजी रै मैलां बादली रै लाल, आ तो फुक फुक फोला खाय``[१]

कोई प्रेमीजन अपने प्रेम का प्रतिदान न चाहे तथापि परोक्षरूप से उसका हृदय अपने प्रेमी से कुछ मांगता ही है, उसी तरह उसका प्रिय भी उसे स्मरण करे, यह आकांक्षा तो उसकी होती है । इसी में समस्त- संतोष, सब कुछ पा लिया जाता है । उर्मिला का यही संतोष था - ``~~आराध्य~~

``आराध्य युग्म के सोने पर, निस्तब्ध निशा के होने पर,
तुम याद करोगे मुझे कभी, तो बस फिर मैं पा चुकी सभी ।`` (साकेत पृ०१२०)

राजस्थानी नारी की भी यही हार्दिक आकांक्षायें रही है -

`` म्हारी बांकड़ली मूंछ्या का सिरदार,थां की ओलूड़ी सतावे ओ राज ।``
घुड़ला चढ़ता चतार जो, म्हाने गैला में कर्ज्यो याद ।``[२]

नारी को चिरकाल से यह शिकायत रहती आई है कि वह तो प्रिय की याद में तड़प तड़प कर पिंजर हो गई है, पर क्या पता निर्मोही प्रियतम भी उसे याद करता है या नहीं । विरहणियों की यह शिकायत मिठास और मृदुता के साथ गीतों में दोहराई जाती है -

`` थां की ओलू ढोला म्हें करांजी, म्हांकी करे न कोई ।``

ओलूं के ऐसे और भी गीत है । ``केसरिया बालम`` की प्रतीक्षा में तो नायिका की``गिणतां गिणतां घस गई आंगलियां री रेख ।``[३]

---

१. प० गीत सं० ४७ २. प० गीत सं० ४८
३. प० गीत सं० ४६

जैसी स्थिति हो गई है । और वह अपनी ननद से बार बार पूछती है -
'' कद घर आसी बाईजी, थांरो वीरो ।'' वह उन्मादिनी सी डगर-डगर, स्थान-स्थान पर जाना चाहती है, जाने किस रास्ते से प्रियतम आ जायें -
'' चालो तो बाई जी, आपां दोनूं सरवर चालां जी, घुड़ला ने पाणीड़ो पावण, आवे थांरो वीरो ।''[१] कैसी उत्कट अभिलाषा हैं ?

संयोगमय क्षणों में जिन ऋतुओं और त्यौहारों ने मिलन-सुख को अति मुखरित कर दिया था, आज वे ही वियोग की घड़ियों में संताप एवं दु:ख दे रहे हैं । प्रकृति के विशाल प्रांगण में दु:खों से कातर मलिन, क्षीण, हताश विरहणी के लिए प्रत्येक ऋतु का आना उसकी मर्मान्तिक वेदना की वृद्धि होना ही है । प्रत्येक ऋतु ने उसके हृदय को आठ-आठ आंसू रुलाया है और जब श्रावण का महीना घनघोर घटा रिमझिम करती बूंदों, घटाओं में चमचमाती चपला को अपने आंचल से निस्सृत करता है, मधुर वातावरण अपने पंख फैलाकर विभिन्न क्रीड़ा-यें करता हैं तब तो उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है । लोकगीतों में वर्णित पुरुष के अंदर सोया हुआ यक्ष अपनी प्रियतमा की याद में विकल हो उठता हैं और नारी के भीतर सोई हुई यक्षिणी अपने प्रियतम की याद में अकुला उठती है । 'बंजर मरुदेश के तपतपाते धोरों' पर शीतल वृष्टि का संचार, सावन की सैसी सुरंगी ऋतु में जब प्रकृति के फूल-फल, लता, वृक्ष, रंगबिरंगी तितलियां यौवन की बहार पागल सी सुध बुध बिसराये घूमती झूमती अठखेलियां करती है तो विरह वेदना से अकुलाई विरहिणी, नायिका के मन में परदेश बसे अपने प्रियतम से मिलने की चाह नदी की बाढ़ बन जाती है । धरा-अम्बर, वृक्ष-लता के प्रगाढ़ालिंगन को देखकर क्या वह प्रियालिंगन की अकथ कामना न करेगी ? प्रिय की सुधि में क्या अश्रु के मुक्ता न पिरोयेगी ? उसकी भावनाएं बरबस व्यक्त हो ही जाती है -

'' लागे रै भंवरजी, मेहूड़ा री छींटां, रावली कटारी राधाव
पधारो मारवण रा रसिया, मेंला जोऊं वाटड़ली ।''[२]

---

१. प० गीत सं० ५०
२. प० गीत सं० ५१

उमड़ते यौवन के रसिक भ्रमर के बिना सूने महल में बाट जोहती विरहणी के हृदय में वर्षा की बूंदों से कटारी के घाव सी असह्य पीड़ा उठती है । वह बेचारी आंखों में प्रियतम की याद लिये और `हिया में दरसण रो उमाव` लिये महल में प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है । उसका प्रियतम जब दीर्घकाल तक नहीं लौटता तब उसकी पीड़ा वेदना समस्त वातावरण को ही पीड़ा से आच्छन्न कर देती है -

`` सावण तो लागो पिया, भादवोजी
कोई बरसण लागो, बरसण लागोजी मेह, हो जी ढोला मेह
अब घर आयजा गौरी रा बालमा ओ जी
छपर पुराणा पिया पड़ गया रै कोई तिड़कन लागा बोदा बांस ।``[१]

गीत की एक एक पंक्ति हृदय को करुणा से भर देती है ।

वर्षा काल के प्रारम्भ में स्त्रियां प्राय: बाग बगीचों, नदी नालों अथवा तलाबों के किनारे तथा मेलों में एकत्रित होकर -``बदली के आह्वान में प्रियतम को मौन-मुखरित निमंत्रण दिया गया है -``बादली बरसे क्यूं नी ए`` इधर वर्षा के अभाव में प्राणी विकल है और इधर प्राणवल्लभ के बिना वियोगिनी को प्रेम का प्रतीक चंपा का वृक्ष प्रतिदिन सूखता दिखाई पड़ता है और बादल आकाश में छाये रहकर भी जब बरसते नहीं तब विरहिणी बादली को बरसने के लिए प्रेरित करती हुई पूछती है -

`` बादली बरसे क्यूंनी ए, बादली चमके क्यूंनी ए
म्हारा भंवर सा रा हवामहल मे चम्पो सूखे ए ।``[२]

यही बादली उसके प्रियतम को उसके नेत्रों से दूर करने का हेतु बनी थी यह जब उसे स्मरण आता है तब वह गा उठती है -

`` बादली ए मेरो चांद छिपायो ।``[३]

अन्तस से निकले निश्छल प्रेम के ऐसे उद्‌गार `पपीहे` से सम्बन्धित गीतों में भी व्यक्त हुए हैं । प्रियतमा के लिये हर क्षण आशामय होता है । न

---

१. प० गीत सं० ५२
२. प० गीत सं० ५३
३. प० गीत सं० ५४

जाने कब अचानक उसके प्रियतम आ जायें । विरह में हृदय प्रकृति के साथ एकाकार हो जाता है । उसे सब अपने प्रतीत होते है । उत्तर दिशा की ओर से मंद मंद बहनेवाली हवा उसके प्रियतम के आगमन का संदेश लाती हुई सी लगती है । इसलिए वह पपीहे से निरन्तर बोलने के लिए कह रही है, संभवत: उसकी पी पी सुनकर उसके प्रियतम आ जायें-

`` रुत आई रे पपइया तेरे बोलणकी रुत आई रे ।``[१]

विरहणी नायिका को इससे भी संतोष नहीं होता है तो वह प्रियतम के आवास पर जाकर बोलने के लिए पपीहा का आह्वान करती है -

`` पपैया तू बोल रे जित म्हांरे आलीजे भंवररो मुकाम ।``[२]

साथ ही प्रिय से मिलने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त हो जाती हैं । जेठ और आषाढ़ माह मिलन की आशा में व्यतीत किये, और अब तो सावन भी बरसने को आ गया अत: बिना मिले मन नहीं मानता -

`` मेरा मन मारुजी मिलबा नै ।``[३]

राजस्थानी वियोग-प्रधान लोकगीतों ने विरहिणियों के आक्रोश को भी व्यक्त करने में कसर नहीं रखी हैं । जहां पपीहे को प्रतिपल बोलने के लिए कहा जाता था आज उसकी इसी विरहावस्था में उसका पिउ-पिउ स्वर हृदय को बींध रहा है । सूर की गोपियों ने मधुवन को उलाहना दिया था ``मधुवन तुम कत रहत हरे ।`` पपीहे की पीउ पीउ वाणी ने विरहिणियों से यहां तक कहला दिया -

`` चांच कटाऊं पपइया रे, ऊपर कालो लूण ।
पिव मेरा, मैं पिव की रे, तू पिव कहेस कूण ।``

और -``पपइया रे पिव की वांणी न बोल
सुणि पावेली विरहिणी रे थारी रालेली पांख मरोड ।``

विरहिणी नायिका अभी तक गम खाये बैठी रही थी । पपीहा के बार बार बोलने पर अब उसे बरजना पड़ा -

`` म्हारे घरे नहीं भरतार पपैया बैरी ना बोलो ।``[४]

---

१. प० गीत सं० ५५
२. प० गीत सं० ५६
३. प० गीत सं० ५७
४. प० गीत सं० ५८

ऐसी बात नहीं है कि समस्त व्यथा नारी के हिस्से में ही पड़ी और वियुक्त पति का हृदय आकुल नहीं होता ? उसे भी बरसा ऋतु में अपनी प्राण-प्रिया की सुधि व्याकुल करती हैं । तभी तो वह महाराणा से कहता है कि हे राणा जी । आप प्रेमियों के हृदय के भाव समझकर मुझे घर की सीख (विदा) दें -

`` मेंह बरस्या तंबू गल्या, हल कर भरिया होद ।
कांमण कंत चिंतारियां, सीख घोनी सीसोद ।
काली काजल सारखी, घटा मंडाणी आज
आजूंणी निस अकेला, जासी किम ओ राज ।``

वर्षा ऋतु की फुहारें विरही हृदय को घायल करती है और जब शरद् के धवल दिवस शीतवायु ले आते है तब लम्बी लम्बी रातों को प्रिय बिना काटना कितना कठिन हो जाता है ? इसे राजस्थानी मृगनयनी ने यों व्यक्त किया है -

`` सियाले मत सांचरो, थांने कामण बरजे कंत ।`` और जब प्रतीक्षा और सहिष्णुता पराकाष्ठा पर पंहुच जाती है तब बहुमूल्य `` तीन माह`` की ऋतु प्रियतम बिना यूं ही व्यतीत होते देख उसका हृदय आर्त्त पुकार कर उठता है -

`` ओ म्हारी जोड़ी रा, ओ मिरगा नैणी रा
रतन, सियाळो राजन् यूं ईं गियोजी ।``[१]

बिछुड़े पति को उपालम्भ देती जाती है और कहती जाती है कि ग्रीष्म के तथा वर्षा के महीने तो लम्बे होकर गुजरते हैं परंतु शरद् के छोटे दिन बहुत ही जल्दी व्यतीत हो जाते हैं । किन्हीं गीतों में विरहिणी नायिका का हृदय गीत विनाशक प्रभाव की चर्चा ननदबाई से करता है -

जाड़ो तो पड़े जी बाई सा म्हारा डूंगरां
मार्‌या - मार्‌या दादर मोर किस विध भुगतूंजी ।[२]

शीत के बाद ग्रीष्म-ऋतु की तपतपाती लू विरहिणी को झुलसा रही है । तब वह ग्रीष्म के ` तावड़े ` (धूप) से प्रार्थना करती है -

---

१. प० गीत सं० ५६
२. प० गीत सं० ६०

"तावड़ा मन्द रो पड़ जा रे
गोरी को नाजुक जीव, सूरज बादल में छिप जा रे।"

प्रत्येक ऋतु अपने साथ उत्सव-त्यौहारों को लिये चली आती है। जिस उमंग भरे हृदय ने त्यौहारों को सार्थकता दे दी थी, आज वही प्रिय-प्रवास के कारण भावहीन हो रहे हैं। संगीतमय होली का त्यौहार ढफ-जंजीरों में गूंजता आ पंहुचा, धानी चुनरियां लहरा उठीं, सब ओर उल्लास मेंला घेरे बनाकर 'होली आई ऐ सहेल्यां मिल खेलां लूर' की ध्वनियां थिरक उठीं। पर विरहिणी को तो ऐसा फागण रुला ही देता है -

"फागण आय गयो
औरां रा सायबा चंग बजावै जी, ज्यांरी गीतै जगाये घरनार।
औरां रा सायबा घरां बसै, कोई म्हारां समंदरां पार।
औरां रा सायबा गीनड़ खेलै, ज्यांरै लूर रमै घरनार।
फागण आय गयो।"

जिनके पति प्रियतम घर है वे सब आनंद से फागण के गीत लूरे और गीनड़ खेल रही है, मेरे प्रियतम समुद्रपार है अत: विरहदग्धा अपने हृदय को थामे बैठी है अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में।

देखते देखते गणगोर भी आ गई। कहां चला गया वह रूठने मनाने का अमित सौभाग्य प्रियतम और प्रिया की प्रणय भरी बातें? होली पर यदि उसका पति नहीं आ सका तो अब गणगोर पर ही आजायें। इसकी याद दिलाता हुआ उसका हृदय अकुला रहा है -

"जी सायब होली तो करी छै परदेस, गणगोरयां आज्यो म्हारा राजजी"[1]

और साथ साथ प्रियतम से सौभाग्याभूषण भी मंगवाती है। गणगौर के बाद राजस्थान में आह्लादकारी सावन भादों की रंगीली तीज अपनी सरसता लिए हुए आती है। जलधर को धरती पर अपार जलराशि उड़ेलते देख और फिर नवजीवन के साथ नव-नवगीत, विटपों की शाखाओं के गले में पड़ जाने वाले

---

१. प० गीत सं० ६१

फूले और फूलों में तरंगित जनमानस को देख देखकर पत्नी ने प्रवासी प्रियतम को शपथ दिला दिलाकर कहा -

`` थे म्हारे आज्यो सायबा, म्हांरी सौंतीजारी रात ।

`` बीजलियां हलमल हुई, आभा किया वणाव,
घर मंडण घर आथियो, घर मंडण घर आव ।``

जो घरा की शोभा है वह घरा स्वामी इन्द्र तो उसके पास आ गया है मेरे घर की शोभा तुम थी शीघ्र अब घर आ जाओ ।

चट्टानों को चीरकर जब स्त्रोत कल कल करके बह निकलते हैं और मोर उन्मत्त हो उठते हैं तब तो पिहर से भी पिया का मन भर जाता है और वह प्रेम की कठोरता को कोसने लगती है -

`` सावण आयो सायबा, मोर हुआ मत्तमंत
इण रुत पीयर मोकली कठण हियारो कंत ।``

ऐसे समय में वह प्रवासी पति से निवेदन करती है -

`` तीज सुण्यां घर आव, मंफल आपरी नौकरी म्हारा राज ।``[१]

नौकरी को अभी रहने दीजिए और तीज सुनकर घर आइये । वह पश्चिम दिशा से पति की राह देख रही है । नौकरी को पांच रुपये की और तीज को लाख रुपयों की बताकर पति को बुला लेना चाहती है । वह स्वयं भी आ सकती है पर कैसे आए, यही विवशता इस गीत में है -

`` आई रै सावणियारी तीज राज मूं कस्यां आऊं ?``[२]

आत्मतोष के लिए बावली सी कभी वह अपनी सहेली से पूछती है -

`` वन में लिपटी तरुवेली सावण रमे है तीज सहेली
अब रह्यो क्यूं जाय अकेली, म्हारो कंत आसीक्द हेली ?``

परंतु उसके भाग्य में यह सुख कहां ? उसकी सखियां विभिन्न प्रकार से अपने को अलंकृत करके प्रियतम को रिफा रही है, परन्तु वह किसे रिफाये ? उसकी व्यथा घनीभूत हो जाती है -

`` आई आई तीज नु हेली सब सखियों रंग राच्यो ।``[३]

---

१. प० गीत सं० ६२
२. प० गीत सं० ६३ ३. प० गीत सं० ६४

फिर दशहरा आया परन्तु प्रिय नहीं आये । जगमगाती दीवाली धरती पर नभ की ज्योति उतार लाई । परन्तु उसके प्राणों में ज्योति करने वाला नहीं लौटा इसलिए वह प्रिय को लक्ष्य करके पूछती है -

" कांई दसरावा रो मुजरो, दीवाल्यां घर री करज्यो जी ढोला ।"[1]

और दीपावली को घर आकर ही मनाने का आग्रह करती है -

सायब ओ जी दीवाल्यां घर की करां ।[2]

श्रृंगार वर्णन में "बारहमासा" का पर्याप्त महत्व रहा है । वियोग श्रृंगार का प्राण है यह, और इसके प्राण वियोग की अभिव्यंजना से है । राजस्थानी लोकगीत में बारहमासे का निम्न गीत उत्कृष्ट उदाहरण है ।

भादू बरषा झुक रही घटा चढ़ी नभ जोर ।[3]

विरह व्यथित सरल एवं कोमल नारी का हृदय अपने प्रियतम की याद में बावरा सा दृष्टिगत होता है । वर्ष पर वर्ष बीत गये प्रेमी का कोई संदेशा नहीं आया । प्यारी के वल्लभ । सावण भादों की झड़ी है आज मदमाता यौवन तुम्हारी स्मृति में बिलख रहा है । तुम मुझे अकेली जिस कुटिया में छोड़ गए थे उसका छप्पर टूट गया है, बांस भी तो टूटे जा रहे हैं । तुम्हारी प्यारी तुम्हारी बाट जो रही है अब तो घर आ जाओ । बरसाती बादल के समान स्नेह सींचनेवाले मेरे मन के बादल ! अब तुम घर आ जाओ । मेरे यौवन के अधिकारी ! मदमाते यौवन को मैं अब अपने वश में कैसे करूं ? यह सब समझ कर अपनी प्रियतमा के सूने संसार में आ जाओ । प्रेम की बस्ती उजड़ रही है । तुम्हारे विरह की घड़ियों में मुझे श्रृंगार नहीं सुहाता । उस प्राकृतिक दृश्य को देखो बेलें वृक्षों से लिपट रही है । संयोगी जन परस्पर आलिंगन ले रहे हैं पर मेरे हृदय देवता ! तुम्हारी प्यारी आज अकेली विरह की आग में झुलस रही है । सभी सखियां बासंती फाग खेल रही हैं । मेरे प्रियतम इस एकाकीपन में कटारी खाकर मर जाने को जी करता है । इस प्रकार विरहिणी नायिका की उक्त तड़पन के सुन्दर भाव बारहमासा में चित्रित हैं वे बड़े मार्मिक है ।

---

१. प० गीत सं० ६५
२. प० गीत सं० ६६
३. प० गीत सं० ६७

'सवतिया दाह' एक ऐसी प्रच्छन्न वृत्ति है जो प्रत्येक स्त्री में निहित होती है, लेकिन उसका रूप पति के एक पत्नी के अलावा दूसरी के लाने पर ही प्रकट होता है। इसका चित्रण अभिजात्य साहित्य में भी प्रचुर मिलता है और लोकगीतों में भी।

प्रस्तुत गीत में 'बडौड़ी' (प्रथम पत्नी) की मनोव्यथा का करुण चित्रण है जिसका पति उसके होते हुये भी उसकी ल्होड़ी (सौत) लेने जा रहा है, वह अकेली अपने घर की छत की सीढ़ियां चढ़कर ऊपर से आवाज देती है कि मार्ग में जाने वाले सवार पथिकों मेरी करुण कथा सुनो कि -

> परणियो लावै ल्होड़ी सौक
> अेकल्यै रा सीरी चढ़ती असवारी हेलो सांभलो।

ऐसी नायिका जो परदार-प्रिय पति को समझाती है और उसे नौकरी पर जाने से रोकने की अनुनय विनय करती हुई कहती है -

> झीणो सूरमो सारती अे म्हैं ऊभी आंगणबीच
> नैणा आंसू साचरिया
> म्हारो काजल रो मचग्यो कीच
> नोकरी मत जावो सिरदार बना, नौकरी है खांडे री धार।

नायिका ने अपने प्रिय प्रियतम को रिझाने के लिये पतला महीन सूरमा और काजल का आंखों में अंजन किया तथा अपने प्रियतम जो नौकरी के लिये परदेश जा रहे हैं उसके पास आंगन में आकर खड़ी रही। लेकिन पति तो 'परदार'-प्रिय है अत: परिणीता की अवहेलना और उपेक्षा कर दी जिससे नायिका अत्यंत दु:खी एवं प्रेम विह्वला हो गई, फलत: उसकी आंखों में काजल घुल-घुल कीचड़ बन गया। उसने अपने पति को समझाते हुये कहा कि मेरे सिरदार बना! तुम नौकरी के लिये परदेश गमन मत करो क्योंकि नौकरी तो बहुत दुष्कर कार्य है जैसे तलवार की धार कठिन है वैसे ही नौकरी का कार्य है जो तुमसे नहीं बन पड़ेगा। नायिका को आशंका है कि परदेश में उसे पर-स्त्री गमन के अधिक अवसर मिलेंगे। वहां कोई भी रोकने वाला नहीं अत: वह नौकरी और आजीविका तक के लिये अपने पति को परदेश नहीं जाने देती है।

बना जावो सब कोई देस पूरब मत जाइज्यो
पूरब है पातरियां रो देस नाजू रो जीव डरपणो ।

नायिका अपने पति का सब दिशाओं में नौकरी के लिये जाने की अनुमति देती है किन्तु पूरब दिशा की ओर जाने की वह अनुमति नहीं देती । उसका मानना है कि पूरब में वैश्यायें (पातरियां) रहती है, कहीं उसका पति उनके मोह-जाल में न फंस जाय । इसी सवतिया दाह के डर से ही वह पूरब की ओर नहीं जाने देती । इस भयानक 'दाह' की पीड़ा की कल्पना भी उसे असह्य है ।

सवतिया दाह के डर से भयभीत होकर नायिका अपने पति को समझाती है -

हीरां रो कांई परखणो, निरखो बालक बनी रो रूप ।
पर घर जाणो बना छोड़ दो, मानो बालक बनी री सीख । ।

हीरे मोती और जवाहरों को क्या देखना और जांचना होता है ? वे तो निरे पत्थर हैं, यदि कुछ देखना ही है तो हे प्रियतम अपनी नवयौवना नवोढ़ा का रूप देखो, जो हीरों से भी अधिक देखने योग्य है और मुझ जैसी छोटी - नवयुवती की बात को ध्यान में रखो तो अब दूसरो के घर जाना छोड़ दो ।

ऐसा नायक है जो संयोग सुख प्राप्ति हेतु अपनी पत्नी को सौता छोड़कर अन्य स्त्री के पास चला गया है इसका चित्रण कृष्ण की लम्पट प्रवृत्ति के माध्यम से किया गया है-~~के~~ कुछ

बाई अे रुकमां बेनड़ी, थारै घरै आया भगवांन
सौगन काढूं म्हारे बापरी, म्हारै घरै नहीं भगवांन
मोचड़ियां पड़ी सांवरा बारणै, खूंटियां टंगियो रुमाल
पैली तो कैती रुकमा बेनड़ी, अबै केंवूला सौक
राधा ने रुकमा लड़ पड़ी, बिच मे हंसे भगवान ।

नायिका अपने प्रियतम के साथ सुखद नींद ले रही है और उसका प्रेमी उसे सोयी हुई समझकर अन्य के पास चुपके से चला जाता है। नायिका अपने प्रियतम की आदत से परिचित है अत: वह उसकी प्रेयसी के पास पंहुचकर अपने प्रियतम पति के बारे में पूछती है। सौत उसे झूठा उत्तर देकर टालना चाहती है, लेकिन नायिका बड़ी चतुर है जो अपने पति की जूतियां एवं रुमाल को वहां देख लेती है और वह सवतिया डाह से इतनी जल जाती है कि जिसे वह आज तक 'बहिन' कहती थी उसे ही वह 'सौक' कह कर लड़ पड़ी। दोनों को लड़ते देखकर नायक निर्लज्जता से हंसता ही रहा। न उसे मान मर्यादा एवं समाज की चिन्ता रही आखिर वह धूर्त जो है। ऐसा नायक जिसे दो पत्नी रखने का शौक है उसका चित्रण प्रस्तुत गीत में है -

सायबा बरवर पांणी म्हे गई सुणी अनोखी बात घणा रा सायबा ओ राज
अेक लुगाई म्हने यूं कैयो थारे घर बनारो वियोव घणरा सायबा ओ राज।

---

१. प० गीत सं० ६८

संदेसो -

भारतीय साहित्य ही क्या देश-विदेश के साहित्यों में दूतों द्वारा संदेश भेजने की परंपरा प्राचीन रही है । मेघदूत, नेमिदूत, उद्धवदूत, हंसदूत, पिकदूत, कोकिलदूत, भ्रमरदूत, पवनदूत आदि कितने ही दूतों द्वारा विरही हृदयों ने अपने सन्देश को प्रियजनों के पास पंहुचाया है । पक्षियों ने लोकजीवन की देहरी पर बैठ विरहिणी के संदेशों में कितनी मिठास भरी, राजस्थानी लोक गीत इसके ज्वलन्त दृष्टान्त है । संदेश-प्रेषण के बदले विरहिणी अपने संदेशवाहक को क्या क्या देगी, इसका लेखा जोखा करना संभव नहीं । राजस्थानी वियोग-श्रृंगार के मुख्य संदेशवाहक काग, कुरजें, सूवटा, पपीहा, कबूतर आदि हैं ।

शकुन-अपशकुन मानने में लोक हृदय बड़ा आस्थावान होता है । दु:ख तो उसे और भी आस्थावान् बना देता है । कुल ललनायें विरह में बौराई सी छज्जे या छत पर काग को बैठा देखती हैं तो प्रिय आगमन की सूचना पाने की संभावना में काग को उड़ाया करती हैं । जायसी की नागमती ने भी अपने विलाप में काग को स्मरण किया था -"होई सरबान विरह तनु लागा जो पिऊ आवे उडे तौ कागा" राजस्थानी का एक प्राचीन दोहा है -

" काग उडावण धण खड़ी, आयो पीव भड़क्क
आधी चूड़ी काग गल, आधी गई तड़क्क । "

वैसे ही अनन्त आशावादी प्रिया ने काग को पहिले बहुत उड़ाने का प्रयत्न किया था, वही नहीं उड़ा । आज वही फिर आ बैठा तो वह बार बार अनुनय विनय कर रही है । उससे प्रियागमन पूछ रही है और यदि वह कार्य कर देगा तो उसे स्वादिष्ट भोजन करायेगी अंगुलियों में अंगूठी पहिना पंखों को रुपहले कर देगी । झनझनाते घुंघरुओं की भेंट और सबसे अधिक तो वह उसके अपने प्रिय के लाने वाले के जन्म जन्मान्तर तक गुण गायन करेगी । इस प्रकार नायिका भिन्न भिन्न ढंग से मनुहार करती है -

" उड़ उड़ रे म्हारा काला रे कागला, कद म्हारा पिउजी घर आवे ।"[१]

---

१. प० गीत सं० ६६

'उड़-उड़' शब्द में कैसी मार्मिक व्याकुल व्यंजना है। विरहिणी ने उड़ने को तो कह दिया। कौवा नाम गांव सूरत तो जानता ही नहीं। कोई बात नहीं वह भी ज्ञात हो जायेगा। प्रेमी प्रेमिका दोनों की ओर से संदेशा भेजने का रोचक विवरण दृष्टव्य है -

"उड़ज्यारे काग गगन का वासी, खबर तो ल्याव राजन की।"[१]
अपने पति की पहचान के लिए पत्नी तीखी नाक, फिरंगी (अंग्रेज) के नौकर और उमरावों जैसी चाल बताकर अपने पति का परिचय देती है। इधर पति भी पत्नी के परिचय में उसकी लम्बी लम्बी कुन्तलराशि (केशों), मृग के से नयनों और "ठकराण्या" की चाल का उल्लेख कर काग के साथ अपना संदेश भेजता है। एक सी ही व्याधि और एक से ही साधन संभव हैं - मिलन शीघ्र हो जाये। इसी तरह के एक अन्य गीत में विरहिणी अपनी दयनीय स्थिति व्यक्त करती हुई पूछती है -

"नैणा रह्या अकुलाय, उफलु आयो म्हारो हिवड़ो
झुर-झुर मरू मैं दिन-रैण, पियारे बिन एकली।"

तो काग द्वारा विरहिणी को आश्वासन दिलाया गया है -

आय मिलैगो थारो स्याम, दिन दस नै झुर झुर ना मरे।[२]

विरहिणी कुरजों को विचरण करती देखकर अपने प्रिय से मिलने जाने के लिये उसके पंख उधार मांग बैठती है -

"कुंजड़ी मारी बैनड़ी, पांख उदारिल्या पीव मिल्यां
उच्छव करां में भलकर पाछींदा।

किन्तु ऐसा किस तरह संभव हो सकता है। अत: कुर्जा से अपना संदेश ले जाने के लिए वह विनय करती है -

"तू छै ये कुरजां मायेली, तू छै धरम की बैण।
ज्यां देखां ढोलो, बसै, ये कुरजां वां देसां उड़ जाय।

---

१. प० गीत सं० ७०
२. प० गीत सं० ७१

पर कुरजा मानवीय भाषा किस तरह बोलेगी यह विचार कर उसकी चोंच पर (ओलमे) उपालम्भ और पंखों पर सात सलाम लिख जाने की बात सोची, परंतु याद आया कि दूर गमन में आकाश की बूंदे तो स्याही को भिगो डालेंगी। अत: सदेश लिख उसकी गर्दन पर बांध दिया जाता है।[१] इधर पत्नी विरह में विकल है। उधर पुरुष परदेश में दूसरी पत्नी से विवाह कर सुखरूप जीवन व्यापन करता है। कुरजें उड़ती उड़ती वहां पंहुचती हैं जहां प्रियतम अपनी दूसरी पत्नी के साथ चौपड़ खेलते होते हैं। वह कुरलाती है। फिर वे दोनों सो जाते हैं। तब फिर बोलती है। अंत में सब परिचय दे देती है। सदेश पाकर पति का सोया हुआ प्रेम जाग कर परित्यक्ता पत्नी के पास जाने को प्रेरित करता है।

एक अन्य गीत में विरह दशा का करुण चित्र उभरा है। सुहाग के आवश्यक चिन्हों के अतिरिक्त अन्य समस्त संयोगानुकूल श्रृंगार की वस्तुओं को विरहिणी ने त्याग दिया है। कुरजां सब कुछ प्रियतम से कह देती है। प्रियतम का हृदय 'उणमणा' हो जाता है। उसके साथी उससे पूछते हैं, पर उसे न तो देश की, न माता पिता की याद आई है। याद आई है तो उसकी प्रियतमा की। वह ऊंट को समस्त व्यथा सुनाकर नौकरी छोड़ चलने को तैयार हो जाता है। ऊंट का आश्वासन गीत में इस प्रकार व्यक्त हुआ है -

"दांतण करो कुंवर बावड़ी, मलमल करो असनान
भंवर थांने वेग पुगायांजी।"[२]

ऐसा ही सदेश सुवटे से दिलवाया गया है।[३]

संदेशवाहक पक्षियों में कबूतर सबसे तीव्रगामी 'हरकारा' है। नारी उर की व्यथा नारी ही जानती है, के अनुसार विरहिणी नायिका

---

१. प० गीत सं० ७२
२. प० गीत सं० ७३
३. प० गीत सं० ७४

कबूतरी से प्रार्थना करती है । उसके स्वर में हुक्म या आदेश नहीं, प्रार्थना, प्यार, आपसीप्रियता और मानवीय संवेदना है । प्रस्तुत लोकगीत 'कबूतरी' है । प्रिय वियोग में अनोखी विषमता से जो दुःख का साम्राज्य खड़ा हो गया है उसे वह किसे सुनाये ? अंत में छज्जे पर कबूतरी नज़र आती है । उसकी चोंच एवं पंखों पर 'उलाहना' तथा 'सलाम' अंकित कर संदेश भेजती है । पिछले प्रहर कठिनता से आंख लगी थी कि स्वप्न में सास के लाड़ले को घर आता देखा । सखियों के साथ चली स्वागतार्थ । चली कि निगोड़ी आंखों ने पूरी तरह मिलने भी न दिया और वह नींद खुल जाने से व्यथा में डूब गई । उक्त दशा का व्यंजक करुण गीत इस प्रकार है -

" कबूतरी री म्हारे भंवर ने संदेशों दीजे ए ।"[1]

लोकगीत में कोयल के हाथ भी विरहिणी संदेशा भेजती पाई गई है -

" लिख भेजां परवानो जी ढोला, कोयलड़ी रे हाथ ।

विरहावस्था में विह्वल नायिका को जो भी मिलता है, 'मारग जाता बटाउ' (यात्री) को भी वह कह उठती है -

" मारग जावता बटाऊ रे सुण म्हारी बात,
मरवण तणा ओलमा ढोले जी ने कही जे रे ।
थारी मरवण पाकी बोर ज्यूं ढोला रसणो चाखण आव,
करहला धीमा चालो राज ।"

विरह भावनाओं का पूर्ण प्रसार इन संदेश गीतों में मिल रहा है ।

वियोग में व्याकुल आस्थावान् नायिका ज्योतिषी के पास भी यह जानने के लिये पंहुच जाती है कि उसका पति परदेश से कब लौटेगा -

" जोसी ते बूझणा बाई जी म्हें गई जी

---

१. प० गीत सं० ७५

इसके लिए वह उसे रुपया देगी, शक्कर घी से मुंह भर देगी। 'जोशी' उसे आश्वस्त कर देता है कि तुम कच्चे दूध से स्नान-श्रृंगार कर लो - "तड़के आसी थारो सायबो जी।"

कभी यही ज्योतिषी प्रिय के आने की अवधि को पीपल के पत्तों की असंख्यता के समकक्ष रखता है तो नायिका कह उठती है -"बालू तो फालूं पीपल थारा रुंख रे" और ननद के आशाजनक प्रत्युत्तर पर वह उसे चंदनहार, चूड़ा और चूंदड़ी देने के लिए तैयार है।[1]

भाव-विह्वल नायिका अपने शरीर को सोलह-श्रृंगार से अलंकृत कर पति की प्रतीक्षा में दृग बिछाये बैठी है। तभी सास आकर अपनी सुलक्षणा वधू से पूछ रही है कि बहू! सूनी सेज में गहने क्यों पहिन रही हो, कोई विशेष कारण है क्या? ऐसा करना ठीक नहीं क्योंकि तुम्हारा पति तो परदेश गया हुआ है। विरहिणी की आशा, उमंगों एवं साज-श्रृंगार का सास को क्या मालूम और क्या मालूम कि आज ही ढलती रात को उसका प्रियतम आने वाला है। अंत में वह सास को इस बात से अभिज्ञ करा देती है कि आज मेरे प्राणधन आने वाले हैं -

"बहू सूनी सेजां में अनवट क्यूं पेरियाजी
थारा धणी गया छै परदेश।"[2]

विरहिणी का कैसा उन्माद है। करुण दुखी हृदय कितनी जल्दी विश्वास-पात्र बन जाता है। शीघ्र ही ज्योतिषी और ननदबाई उसके विश्वास के पात्र बन गये। अब तो उसका कंठ "अधीरा अमलां में म्हारी सेज अलूणी रे" गाकर प्रियतम को पुकारने लगा है -

"काला काला केस भंवर म्हारी आदी कामणगारी रे।"[3]

---

१. प० गीत सं० ७६
२. प० गीत सं० ७७
३. प० गीत सं० ७८

यही नहीं आने वाले 'पांवणा मारूजी' के लिये हृदय का समस्त संचित प्रेम भोज्य-पेय पदार्थों में भी उड़ेला जाने लगा । सोचने लगा कि प्रिय के घोड़ों को आम्र-वृक्ष से बाँधकर प्रियतम का डेरा उपवन में करायेगी और -''बागा में गोठ'' दिलायेगी, प्रियतम को नक्काशी चषक से छक कर मदिरा पिलायेगी -

'' थे म्हारै आवजो पांवणा मारूजी करनै घोड़ा रौ घमसाण म्हारा राज ।''[१]

आनंद का कैसा भावभीना कल्पना-चित्र है । जब उस काल्पनिक आनंद की छिटकती मुस्कानों पर यथार्थ का आघात होता है, वास्तविकता अट्टाहास कर क्रूर उपहास कर बैठती है, तब उसका हृदय अतिशय व्याकुल हो जाता है । कभी भविष्य के सपने बुनती, भावसंजोती, और कभी उठकर कभी ऊपर नीचे चढ़ उतरकर अपने 'बादीला' की प्रतीक्षा करतीं । विरहिणी का प्रियतम नहीं आया तब तो बड़ी ही व्याकुल हुई -

'' ए जोहुं रै मिणियारा थारी बाट ऊंची रै चढूं रै नीची उतरूं ।''[२]

'अनोखी चोरी' नामक गीत में प्रियाभाव में आभूषण हीनता का विलक्षण वर्णन विरहिणी के मुख से निःसृत हो रहा है । उसकी टीकी फीकी पड़ गई है । हिंगलू पर 'सिवाल' (काई) चढ़ गई है और तभी उसका हृदय नरवरगढ के लिए अशुभ कामना करने लगता है । वहां बिजली गिर जाये जिससे प्रिय वहां से आये तो सही । गीत इस तरह है -

'' महलां में चोरी भंवरजी होगयी जी ।''[३]

विरहिणी की भावनाओं (अशुभ कामना) पर लांछन नहीं लगाया जा सकता । वह निरीह क्या करे ? सीमाहीन सीमाएं । प्रिय वियोग कब तक सहय करें ? मनोवैज्ञानिक तथ्य तक लोकगीत पंहुचने की क्षमता रखते हैं । बार बार उसकी सखियां उससे पूछती हैं -

---

१. प० गीत सं० ७६
२. प० गीत सं० ८०
३. प० गीत सं० ८१

"थारा किस विध खुलाजी केस, नैणा भरै, टपका पड़े, थारा किस विध विरंगा जी भेस" वह प्रत्युत्तर देते देते परेशान हो गई है। गीत मर्मस्पर्शी है – "मैं तने बूझूं ये सखी।"[1] कैसी विडम्बना है ? अपने प्रियतम को भावावेश में पुकारती थी। विरहिणी लज्जा अनुभव करती और प्रिय के बिना रहा भी नहीं जाता। प्रियतम को क्या मालूम कि उसकी स्मृति में उसकी प्रेयसी इतनी कृशकाय हो गई है कि अंगुली की अंगूठी कलाई तक चढ़ जाती है –

"हेलो देती लाजा मरुं, भालो दियो न जाय।"[2]

नारी का जीवन प्रियतम के प्रवास पर वैसे ही शून्य हो जाता है और जब उसे ज्ञात हो जाता है कि उसका प्रियतम परदेश में अन्य कामिनियों के साथ मस्त हो गया है तो हृदय की वेदना और अधिक चीत्कार कर उठती है –

"परदेश जावे तो पिया जल्दी पाछा आवज्यो
परदेसी की मिरगानैणी सूं नैणा मती लगावज्यो।
सन्ध्या पूजा दवे भावणा ॥ मांने भूल मत जावज्यो
बचता रीज्यो बुरियो सूं, आपणो धर्म निभावज्यो।"

इससे सम्बन्धित 'जलो' गीत है। कहा जाता है कि जोधपुर के किसी महाराजा ने एक विवाह उदयपुर किया था। वे एक बार उदयपुर कई दिन तक रुक गये तो उनकी पहली रानी ने इस गीत की रचना की थी। भीलों, तालाबों और पहाड़ियों की सुरम्य प्रकृति से घिरे उदयपुर शहर में रुका उसका प्रियतम जब नहीं लौटा तो उसके श्रृंगार के समस्त उपकरण निस्सार हो गये। नायिका ने अपनी जोड़ी के 'जलो' को जाने से कितना मना किया था। पर वह हठीला चला ही गया। वह तो अब

---

१. प० गीत सं० ८२
२. प० गीत सं० ८३

उदयपुर में आनंदोत्सव में रत है और इधर नायिका की स्थिति बड़ी ही करुणाजनक हो रही हैं -

`` जलो म्हारी जोड़ रो, उदियापुर माले रे ।``[१]

उदयपुर जाकर अपनी प्रियतमा को विस्मृत कर दिया है । वह संभवत: उदयपुर की चतुर स्त्रियों की प्रेमलीला के जाल में फंस गया है । इधर विरहिणी प्रिया के लिए समस्त आमोद-प्रमोद फीके हैं । वीर तेजस्वी नायक के बिना घर में प्रकाश कैसा ? उसका प्रकाश तो प्रिय था । श्रृंगार के लिए सान्ध्य-वेला में बढ़ इन, मालिन, तमोलिन क्रमश: पलंग, पुष्पहार और पान लाती हैं । शैय्या सजाती है पर उसके नाथ घर पर नहीं । अत: वह इन सब वस्तुओं का वर्जन कर देती हैं ।

` मोत्यां री जागीर` `नैणां री बरसात` से लुटाती दिन रात प्रियतम को `ओलूं` में पुकारती जब प्रियतमा की आंखें लग जाती है तब हृदय की समस्त आशा-आकांक्षायें फिलमिलाती स्वप्न की दुनियां में साकार हो उठती है । स्वप्न की इन प्रेमभरी वीथियों में राजस्थानी विरहिणी प्रिय संग कितना विचरी है और आंख खुल जाने पर कितनी व्यथित हुई है ? कितनी रोई है ? सोती आंखों और जागती कल्पनाओं से उद्भवित् स्वप्न, काश कभी समाप्त नहीं होता, विरहिणी नायिका ` सपनों ` - गीत गा-गाकर अपने हृदय को हल्का किया करती है -

`` सूती थी म्हें रंग मैंल में जी, सूती भंवर सा नैदेल्याजी ,
सपनैं म्हारा भंवर मिलाया जी ।

और फिर स्वप्न से उस क्षणिक मिलन और उस मिलन - प्रसूत वेदना की अभिव्यक्ति करती हुई वह कहती है -

---

१. पृ० गीत सं० ८४

" क्यूं तो थे म्हाने- दोरा मिल्या, क्यू थें दिया टाल ।
कर जोड़ विनती करुं, रिल़ मिल़ लागूं पाय
सपना रे थे म्हाने रुलाई रे
सपना रे म्हांने फिर मिलायोसा ।"

अन्य गीत में पिछले प्रहर-पत्नी ने प्रिय को "सुल्ताण स्वप्न" में पंचरंगी पाग पहने, कंधे पर हरा रुमाल डाले, कर में शीशी और प्रेम का चषक लिए आंगन में जूतियों की आवाज़ करते आते देखा । देहरी पर 'सेल' चमकी । भंवर ने घोड़ी को यथास्थान बांधा । 'सेले' को रखा, टग-टग करते महल में चढ़ सुदृढ़ किवाड़ खोले । खुशी से बौराई प्रियतमा का हाथ पकड़ उसके हृदय की बात पूछी और वह अपने हृदय की बात अभिव्यक्त कर पाती इसके पूर्व ही "बेरिन आंखें" खुल गईं । आंखों का वह अतुल सुख, वह मृदुल स्पर्श, और अमृतोपम वाणी आंख खुलते ही विलीन हो गई । स्वप्न के द्वारा वह ठगी गई । पर इसमें स्वप्न का क्या दोष ? उसने यही तो इच्छा की थी कि वह किसी तरह विरहिणी को उसके बिछुड़े प्रियतम से मिला दें ।' स्वप्न' को व्यक्तित्व प्रदान कर उसके द्वारा कहलाया गया है -

" म्हें छां सुपना सरब सुल्ताणाजी,कोई बिछड्यां ने देवां र मिलाय ।
म्हें छां सुपना ढलती रैण रा जी ।"[१]

स्मृतियों की बदलियां जब बहुत घनीभूत हो जाती है, तब वह कहीं न कहीं से अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग खोज ही लेती हैं । प्रगाढ़ अनुराग को अपने संदेश भेजने के लिए कोई दूत ढूंढ़ना नहीं पड़ता वरन् हृदय के पारस्परिक अगाध स्नेह के कारण हृदय को स्पर्श करती हुई मुख से निकलती हैं 'हिचकी' । जनधारणा है कि "हिचकी" किसी स्मृति

---

१. प० गीत सं० ८५

विशेष में ही आती है । किसी को बार बार `चितारने` (याद करने) पर हिचकी भी तीव्रावेग से आने लगती है जिसे राजस्थान में `ढ़ोढ़ी` हिचकी आना कहते हैं । राजस्थानी लोकगीतों ने इसका मर्म समझा और वियोग में `हिचकी` पर भी गीत गूंज उठा -

`` म्हारो बादीलो चितारे ढोढ़ी आवे हिचकी ।''[१]

वियोग की ऐसी घड़ियों में हिचकी का बार बार आने से दाणिक मानसिक मिलन विरहिणी नायिका को सुखकर लगता है । पर उसका प्रियतम शीघ्र क्यों नहीं आ जाता है ? यही मूलभाव इस गीत में लिपटा हुआ है ।

आमोद-प्रमोद, बाटिका, विहार महलादि में चिर प्रतीदित की स्मृति व्याकुल करती ही रहती है, किंतु हिचकियों पर हिचकियां आने से उसके `राजन` के प्राण कितना कष्ट पाते होंगे यह प्रियतमा विस्मृत नहीं कर पाती -

` गेला में चींतारे, राजन मार गिये चींतारे
वालतड़ां हिचकी घड़ी घड़ी आवे ए
म्हारा सजनां रो जीव दु:ख पावे ए
हिचकी घड़ी ए घड़ी मत आवे ए ।[२]

वियोग श्रृंगारिक राजस्थानी लोकगीत हृदय की एक एक वेदना को करुणा-कलित स्वर लहरियों में अभिव्यक्त करते जाते हैं । जहां प्राणों ने प्रिय कक के लौटने की लदालदा आशायें बांधी थी, रिसती पीड़ाओं को सहय किया, स्वप्नों से हृदय को बहलाया, उपालम्भों को प्रिय तक पहुंचाया और एक समय ऐसा मर्मांतिक भी आया, जब `फूर फूर` करती श्वास - प्रश्वास अपने आधार को छोड़ जाने कहां विलीन हो गई । निरन्तर बहने वाली अश्रुपूरित आंखें निरीह हो चुकीं । इस लोक से न जाने किस परलोक में अपने प्रियतम को ढूंढ़ने चल पड़ी थीं । प्रियतम को तो उसकी प्रियतमा के बिमार (मांदी) होने की सूचना मिली

---

१. प० गीत सं० ८६
२. प० गीत सं० ८७

ही थी । किन्तु जब उसने अपनी प्रिया को स्पंदन-हीन पाया होगा, उस समय उसके संपूर्ण अस्तित्व की क्या स्थिति हुई होगी ? राजस्थानी लोकगीतों ने विरह की ऐसी चिर मर्मांतिक वेदना को भी शब्द लहरियों में छलकाया है -

"लिख लिख कागदिया मेलू, जाय कचेड़िया दीजो
ओ थारी मरवण मांदी ओ ।"[१]

किसी तरह राजाजी से सीख (विदा) लेकर समस्तजनों की शुभकामनाऐं लेते हुए प्रियतम ने घर में प्रवेश किया । उसे सब दृष्टिगत हुए किंतु उसकी 'जोड़ायत' उसकी 'परणियोड़ी' कहां गई ? ज्ञात हुआ उसकी 'मांदी' प्रिया 'घणोरी नींद' लेती हुई महल में सो रही हैं । प्रियतम ने ढोलिये में सोती उस विरह-विह्वला का घूंघट खोल ज्योंही मुख देखा प्रियतम की चीत्कार निकल गई । चिर निंद्रा में उसकी प्रिया, उसके 'टाबरिया री माय' सदा के लिये सो चुकी थी । जीवन के समस्त उल्लास एक एक करके बिखर चुके थे । घना अंधकार आच्छादित हो गया । कहां से ढूंढ़कर लाये अपनी 'घणाहेताळूनार' को ? अंतिम संस्कार की तैयारी होती है । अपने बच्चों को अपनी मां के पास भली-भांति (सोरी) रखने का वायदा कराकर वह 'जोगीड़ा' बनने को तैयार हो जाता है । किंतु योगी होकर भी उसे उसकी जीवन सहचरी (जोड़ायत) नहीं मिल पाई । मौत की फूत्कार करती बीन अपने विकराल संगीत में जीवन के समस्त राग डस कर ले गई । उसकी आत्मा सम्पूर्ण सृष्टि में चीत्कार कर-करके प्रियतमा को पुकार उठती है, विलख उठती है -

'म्हारी मरवण मरगी रे, जोड़ायत मरगी रे ।"[२]

---

१. पृ० गीत सं० ८८
२. पृ० गीत सं० ८९

भवभूति की करुण कविता वज्र हृदय को भी तार-तार कर देने की अपूर्व क्षमता रखती है तो इन लोकगीतों से भी सम्पूर्ण सृष्टि पसीज उठती है ।[१] विदाई के अवसर पर लड़कियों का माता-पिता से वियोग होता है । वियोग में पति से बिछोह होता है और वैधव्य में अपने प्रियतम से सदा के लिए आत्यन्तिक विच्छेद हो जाता है । पूर्व के गीत में पुरुष की करुण पुकार कणगित हो रही है तो निम्न गीत में यौवनमयी विधवा के मार्मिक उद्गार हृदय को झकझोर जाते हैं -

सायब को ढोलो सायब सूं छैटी पड़ी रे
मरूं कटारी खाय, जोबण में सन्यासियो रे
मली विधात वाय, सायब को ढोलो -----

वस्तुत: सूक्ष्मता और विशदता लिए राजस्थानी लोकगीतों की ये विरहजन्य स्वर लहरियां कितनी मार्मिक हैं ?

---

१. डॉ० कृष्णादेव उपाध्याय, भोजपुरी ग्राम गीत - पृ० ३६

विप्रलंभ श्रृंगार के लोकगीतों में नायक, नायिका तथा अन्य -

लोकगीतों के निर्माण में कक्क कक्किकायें कका क स्त्रियों का अपेक्षाकृत अधिक योग रहा है । जीवन का एक एक अंश लोकगीतों के विशाल दर्पण में प्रतिबिम्बित हो उठा है । ऐसा लगता है कि नारी कंठ से उद्भूत होकर नारी जीवन की विवृत्ति में ही अपने को विलय कर देना लोकगीतों का अभीष्ट है । लोकवाणी में अवतीर्ण प्रत्येक गीत नारीत्व की कोमलता, करूणा, स्नेह और ममता से संस्पर्शित है । कहीं नारी के उत्कर्ष की गाथा संजोए और कहीं अपकर्षानुभूति में गहन वेदना छिपाये लोकगीतों के स्वर वायु-मंडल में गूंजते रहते हैं ।

नायक-नायिका के लिये अभीष्ट की अप्राप्ति ही विप्रलम्भ अथवा वियोग कहा गया है । विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेद आचार्यों ने स्वीकार किये हैं - १- पूर्वराग, २- मान, ३- प्रवास तथा ४- करूण । राजस्थान के वियोग श्रृंगारी गीतों में ऊपर निर्दिष्ट विरह-वर्णन सामान्यत: उपलब्ध नहीं होता है । मूलत: भारतीय काव्यशास्त्र समूचे साहित्य को प्रभावित करता रहा है किन्तु लोकगीतों में वर्णित नायक नायिकायें शास्त्रीय आधारों पर प्रस्तुत हुये प्रतीत नहीं होते हैं । लोकगीत विषय एवं वस्तु की दृष्टि से अनुभूति-परक है, इन लोकगीतकारों का उद्देश्य- केवल भावनाओं के तीव्रतम उद्रेक को प्रस्तुत करना ही रहा है । इसके अतिरिक्त ये गीतकार रीतिकालीन कवियों की भांति काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ भी नहीं रहे हैं । समूचा लोकसाहित्य भावनाओं का एक स्वच्छन्द प्रवाह माना जा सकता है, इसलिये स्पष्ट रूप से विरह के भेद क्रमश: चित्रित नहीं किये गये हैं परन्तु विप्रलम्भ श्रृंगार में लोकगीतकारों ने सामान्यत: मान एवं प्रवास के चित्र उपस्थित किये हैं । अतएव प्रस्तुत सन्दर्भ में मानिनी नायिका एवं प्रोषित-पतिका का वर्णन किया जा रहा है ।

मानिनी - प्रियापराधजनित कोप को `मान` कहते है । इसके दो भेद है - प्रणयमान और ईर्ष्यामान ।

आई आई कक्कि मारूणी ने रीस
मैलां सूं नीचे ऊतरी जी म्हारा राज
खोल्या खोल्या सोळा सिणगार
रातो तो ओढ्यो पोमचो जी म्हारा राज ।

नायकमान - नागजी ओ सूतो खूंटी तांय
बतलायां बोलै नहीं
नागजी कदैयक पड़सी काम
थूं आडो फिर बतलावसी ।

ईर्ष्यामान - पति की अन्य नारी में आसक्ति देखने, अनुमान करने या किसी से सुन लेने पर स्त्रियों द्वारा किया गया 'मान' 'ईर्ष्यामान' कहलाता है । यथा -

लूर - नैंनी नैंनी टिमकियां म्हांरी
नैंनी नणादल दैवे रे
मोटोड़ो पतासो म्हारी सौक दैवे रे
बळतै काळजियै हां हां -
रे काळजियै करौत वेगी रे
बळतै काळजियै ।

प्रोषितपतिका नायिका - नायक-नायिकाओं में से एक का परदेश में होना 'प्रवास' कहलाता है । यह प्रवास कार्यवश, शापवश, भयवश तीनों कारणों से हो सकता है । कालक्रम के अनुसार ये नायिकायें तीन प्रकार की होती है - प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका । राजस्थानी वियोग प्रधान गीतों में इसी नायिका का चित्रण प्रचुरता से हुआ है जो दृष्टव्य है -

अधमण दिवलै तेल बळियो ढोला, खांगो रह्यो किवाड़
मारा जी चढ़िया चाकरी, बासी रह्यो बणाव

२- काला काला केस भंवरजी आठी कांमण गारी ओ
आधी रा अमलां में म्हारी सैज अलूंणी रे ।

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका - 'रुकथंभियो' और 'ढोलामारू' की नायिका जब कार्यवशात् नायक का प्रवास सुनती हैं तो उनका तन सन्तप्त हो जाता है । भावी वियोग की कल्पना मात्र से ही वह सिहर उठती है । नायिका लाख मिन्नतें करती हुई कहती है कि श्वसुरजी, जेठजी, देवरजी तथा नणदोई जी को भेजदो और अन्त में खेत में काम करनेवाले हाली को भेजने का अनुरोध करती हैं । लेकिन कर्तव्यनिष्ठ नायक रुकता नहीं । तब चाकरी का परवाना लाने वाला 'राईके' को भी शाप देती नहीं चूकती -

मरजो रे राईका थांरोड़ी घर नार ।

प्रवसत्पतिका नायिका - जिसका पति अभी परदेश जा रहा हो । प्रियतम युद्ध के लिये जा रहा है, नायिका का हृदय उसे रोकना चाहता है । अपने वियोग की अभिव्यंजना के लिये उसके पास एक ही मार्ग था - वह उस स्थान पर आई जहां से उसका पति घोड़े पर सवार होकर जाने वाला था । नायिका ने घोड़े की लगाम थाम ली और कातर पक्षी की तरह आसूं ढलकने लगे -

झेली झेली सुन्दर गोरी घोड़े री लगाम,
आसूं तो ढलकाया कायर मोर ज्यूं जी म्हारा राज ।

विरहोत्कंठिता नायिका - जिसका पति निश्चित समय के भीतर बिना अपराध के न आ सके और इसीलिये वह दुःखी है । 'केसरिया बालम' गीत में पति प्रतीक्षा में विव्हला नायिका का चित्र है -

आवण आवण कह गया और कर गया कौल अनेक,
गिणतां गिणतां घस गई म्हांरी आंगल्यां री रेख ।
केसरिया बालम आवोनी पधारो म्हारे देस ।

प्रोषित-नायक - आकाश में काली काली घटायें उमड़ रही हैं । बादलों में बिजलियां चमक रही हैं ऐसे मनमोहक समय में रसिक नायक तीज मनाने अपनी प्रिया के पास आने के लिये महाराणा के दरबार से छुट्टी मांगता है -

'मे' बरस्या तंबू गल्या, हलकर भरिया होद ।
कामण कंत चितारिया, सीख योनी सीसोद ।

~~कृ्क्क किम~~ अन्य पात्र - विरह की घड़ियों में नायक-नायिका को समस्त चराचर जगत में अपनत्व का बोध होता है । ऐसी अवस्था में पारिवारिक जन और साथी सहयोगियों से तो सहानुभूति मिलती ही है पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और चांद-तारे भी उन विरहीजनों की सहानुभूति में मानवी रूप धारण कर लेते हैं । विरह-सम्बन्धी राजस्थानी लोकगीतों में इन सबका वर्णन यथास्थान पूर्ण हार्दिकता के साथ किया गया है ।

'पनां मारू' के चाकरी पर जाने की अवस्था में उनकी विरहिणी झाली राणी के सहयोगी पात्रों में सीस गूंथने वाली नाइन, मेंहदी मांडने वाली नणद बाई, सास और देवर का सरस चित्रण हुआ है ।[१]

---

१. थें तो चाल्या पनां मारू चाकरी । राजस्थानी लोकगीत - डॉ० पुरूषोत्तम-लाल मेनारिया, पृ० १२१.

एक अन्य विरह सम्बन्धी गीत में नायक के प्रवास में जाने पर विरहिणी नायिका के साथ खेलने वाली देराणी, जेठाणी और नणद, साथ सोने वाली छोटी नणद और साथ जीमने वाले देवर - भोजाई का वर्णन किया गया है ।[१]

विरहिणी नायिका को अपना "चांद" छिपाने वाली "बादली" भी नहीं सुहाती -

बादली ए म्हारो चांद छिपायो ।[२]

विरहिणी के लिये कागलो, कुरज और कोयल सन्देश-वाहकों के रूप में सहयोगी पात्र हैं जिनसे सम्बन्धित अनेक राजस्थानी लोकगीत हैं -

१- उड़-उड़ रे म्हारा काला रे कागला
२- तू छै कुरजां मायली, तू छै धरम री बैण
३- आंबे तो बोली कोयलड़ी ढोला ।[३]

---

१. धन वारीजो सूरत पर, राजस्थानी लोकगीत - पृ० १२४
२. परिशिष्ट गीत संख्या ५४
३. परिशिष्ट गीत संख्या ६२

संदेश प्रेषण -

संदेश-प्रेषण की परम्परा पुरातन काल से चली आ रही है। आदि काव्य रामायण में विरही राम अपना संदेश वीर हनुमान द्वारा विरहिणी सीता तक पहुंचाते हैं। कवि कुलगुरु कालिदास रचित संदेशकाव्य 'मेघदूत' में विरही यक्ष अपना प्रेम संदेश मेघ के माध्यम से अलकापुरी में अपनी प्रिया तक पहुंचाता है। राजस्थान के विरह-प्रधान गीतों में विरही अथवा विरहिणी द्वारा व्यक्ति या पक्षी के माध्यम से संदेश प्रेषित करना, प्रसिद्ध कथानक रूढ़ि के रूप में मिलता है।

आश्रय की स्थिति - संदेश-प्रेषण विप्रलम्भ की अतीव वेदनामयी एक विशिष्ट महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जो नायक अथवा नायिका द्वारा सम्पादित की जाती है। यह स्थिति पूर्वराग, प्रवास तथा मान दशाओं में उत्पन्न हो सकती है। स्थूल रूप से आश्रय की स्थिति के दो भेद किये जा सकते हैं - (१) पूर्वराग दशा में संदेश तथा (२) विवाहोपरान्त संदेश प्रेषण। 'ढोला मरवण' में यद्यपि मारवणी का विवाह सम्पन्न हो जाता है लेकिन उस विवाह का ज्ञान नहीं होने से, इनके द्वारा भिजवाया प्रेम-संदेश पूर्वराग दशा की कोटि में ही आता है। रतनरांणो, पन्नाबिरमदे, निहालदे, मूमल, जलो आदि गीतों में विवाहोपरान्त संदेश प्रेषण दृष्टिगत होता है।

संदेशवाहक - मारवणी अपना प्रेम-संदेश ढांढी द्वारा भिजवाती है। अधिकांश विरही गीतों में पक्षियों - तोता, कबूतर, कुर्जा, कौआ आदि द्वारा संदेश प्रेषण का कार्य हुआ है जो परम्परित रूप में दृष्टिगोचर होता है। कहीं-कहीं पथिक द्वारा भी संदेश-प्रेषण हुआ है। संदेश-प्रेषण में नायिकाओं की आकुलता तथा सही स्थिति में पंहुचाने की चिन्ता अभिव्यंजित हुई है। प्रेम पत्र संदेशवाहक को कहते समय अथवा देते समय, नायिका की आंखों में आंसुओं का आना, उसके हृदयस्थ अनेक संचारी भावों को प्रकट करता है। उसकी ''व्याधिदशा'', प्रेमाधिक्य, प्रिय के दीर्घकाल तक नहीं आने पर विद्रोह आदि सभी भाव एक साथ कार्य करते हुये हमें दिखाई देते हैं।

प्रेम संदेशों में श्रृंगार भावना - मारवणी के प्रेम संदेश में मारवणी की विप्रलम्भ जनित शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं एवं दशाओं का तथा अन्तर को विलोड़ित करती असंख्य संचारी भावनाओं का बड़ा ही सफल एवं

हृदयग्राही चित्रण किया है । इस प्रेम-सदेश में भावों की सहजता तथा समर्पण की गहनता सहसा ही पाठक का चित्त खींच लेती हैं । मारवणी का यह सदेश राजस्थान के समूचे श्रृंगार-साहित्य में अन्यतम है । चिन्ता, स्मृति, आशंका, उद्वेग, भय, पश्चाताप आदि विरहजन्य मनोदशाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रांकन हुआ है । सबसे बढ़कर इसमें भाव और अभिव्यंजना की वह सहजता एवं निश्छलता मिलती है जो स्वत: उद्भूत उद्गार का लक्षण होती है ।[१] मारवणी ढोला को प्रेम संदेश भेजती है -

> या प्रेम पत्रिका दीजो, म्हारा मारूजी ने जाई केजो
> आसूं पड़ पड़ अंगिया टपके, बदन गुलाबी भीज्यो,
> कर कर चिन्त्या काली पड़गी, सूख सूख तन छीज्यो ।
> अमृत केरी रतन मूंदड़ी, या सेंदाणी लीज्यो,
> भोजन जीम्बा बैठा हो तो, पाणी अठै आइने पीज्यो ।

यौवन की क्षण भंगुरता - मारवणी की भांति विरहिणी नायिकायें कभी आनन्दमय यौवन को क्षणिक बताते हुये व्यर्थ व्यतीत होने वाली यौवन वय की मांसलता के प्रति घोर चिन्ता प्रकट करती हुई आलम्बन ढोला (पति) को आनन्द भोग का आमन्त्रण देती हुई कहती है, कि हे ढोला ! पूर्ण यौवन से भरी यह देह दिन दिन क्षीण हो रही है । अधिक विलम्ब करोगे तो फिर किसका आनन्द लोगे ? यौवन रूपी आम्रफल रहा है, आकर उसे चख लो । उक्त कथनों में अप्रकट रूप में नायिकाओं के अथवा मारवणी का यौवन वय-क्षीणता सम्बन्धी मानसिक चिन्ता का भाव स्पष्ट है । गीतकारों ने भावाभिव्यंजना के लिये प्रतीकों का माध्यम स्वीकार किया है ।

१- थारी मारवण पाकी आंबा जियूं ढोला रसड़ो
   धोरण घर आव - करहला धीमा चालो राज ।।

२- उजड़ खेड़ा भंवरजी ! फेर बसे जी,
   हां जी ढोला ! निरधन रे धन होय ।
   जोबन गये पीछे कना बांवड़े जी,
   ओ जी थांने लिखुं बारम्बार,
   जल्दी घर आओ जी क थारी धण एकली जी ।
   जोबन सदा न भंवरजी ! थिर रहे जी,
   हांजी ढोला ! फिरती घिरती छांय ।

१- स्व. जगदीशसिंह जी गहलोत
राजस्थानी लोकगीत पृ.१५८

उपालम्भ -

व्यतीत होते हुये यौवन की चिन्ता के साथ ही नायिकायें अपने प्रियतम को उपालम्भ देती हुई कहती है कि हमने हमारे सारे साज-श्रृंगार त्याग दिये हैं । आंखों से निरन्तर पानी ही बहता रहता है तथा आंखें फूल कर लाल हो गई हैं । दृष्टि मंद हो गई है । काग उड़ाते उड़ाते हाथ थक गये हैं । मुख से निःश्वास छूटती रहती है । हे नाथ ! तुम्हारे अभाव में सेज भी अलुणी हो गई है ।

थारे कारण सुन्दरी कांई तज दियो सिणगार
औरां रे काजल टीकियां रे थारी मारवण रूखा नैण
औरां रे ओढणा चूनड़ी थारी मारवण मेला बेस
नाक भरे नथ नीसरे थारी मारवण छूटा केस ।

२- म्हारा प्राण ! उमरावजी हो रसिया ।
पिव पिव करती मैं कहूं पीव न मेरे पास
सूनी सेजा में पड़ी रात्यूं मारू सांस ।।

इससे भी अधिक कठोर उपालम्भ देती हुई नायिकायें कहती है - हे कुर्जा पक्षी ! तू जाकर प्रियतम से कहना कि तुमने शादी करने का पश्चाताप क्यों किया ? क्यों नहीं अखंड कुंवारे रहे । मैं भी कुंवारी होती तो मुझे अनेक वर प्राप्त होते । ऐसा विरह का संताप तो नहीं होता -

कुरजा म्हारो पीव मिलादे अे
लसकरियो ने जाय कहिजे क्यूं परणो थे मोय
परण पराछित क्यूं लियो अे जी रह्यों क्यूं ना
अखन कुंवरी - कुंवारी ने वर तो घणां छा जी ।

अंतिमेत्थम -

ढोला के विरह में सन्तप्त मारवणी अपने जीवन तक से उकता जाती है । आवेश एवं रोष प्रकट करती हुई वह ढोला को अपने मरण तक का संकेत करती हुई कहती है कि अगर तुम वसंत ऋतु के फाल्गुन मास में नहीं आये तो मैं चर्चरी नृत्य के मिस खेलती हुई होली की धधकती ज्वाला में कूद प्राणान्त कर लूंगी । क्रोध एवं रोष संचारी इस कथन में हमें कार्य करते हुये दृष्टिगत होते है । इसमें एक अटूट निश्चय सा भाव भी सन्निहित है,

जो मिलन विश्वास लिये है ।

फागण मास वसंत ऋतु, आयौ जे न सुणेस
चाचर के मिस खेलती, होली झंपावेस ।।

ऐसा ही एक और गीत- दोहा देखिये -

जइ तूं ढोला ना वियउ, काजलि मारी तीज ।
चमक मरेसी मारवी, देख नवंता बीज ।।

पतिपरायणाओं के पास अपने मरण की सूचना देना ही तो, कठोर प्रिय को बुलाने हेतु अंतिम अस्त्र है । मारवणी ने मरण की सूचना देकर उसी अस्त्र का यहां प्रयोग किया है ।

विप्रलंभ श्रृंगार के लोकगीतों में प्रकृति चित्रण -

संयोग में उपकरण चाहे वह प्रकृति प्रदत्त हो अथवा भौतिक सभी जितने सुखकारी-शीतल प्रतीत होते हैं वे वियोग में हृदय विदारक एवं दाहक हो जाते हैं, और विरह ज्वाला को उदीप्त करने में सहायक होते हैं। प्रकृति वर्णन में षड्ऋतु एवं बारहमासा काव्य रूपों को ही अपनाया है।

आभिजात्य साहित्य की भांति लोकगीतों में भी संयोग पक्ष की अपेक्षा श्रृंगार रस के वियोग पक्ष के गीत अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं। यहां के विप्रलम्भ श्रृंगार के गीतों की विशेषता यह है कि इन गीतों में पति का विरह कम गाया गया है और पत्नी-विरह के स्रोत विभिन्न रूपों में उमड़े पड़े हैं। मरूदेश में उमड़ने वाली काली कांटल बादली, बिजली, वर्षा और हरियाली में मयूरों का मदोन्मत्त होकर नाचना, पपीहे की पुकार, दादुरों की कामोत्तेजक ध्वनि, पक्षियों का कलरव, घोड़ों की हिनहिनाहट, प्रेमियों को दूर रखने वाले हरे-भरे पर्वत और उनके बीच बहनेवाली भरपूर नदियों का भावनानुकूल प्रयोग कितने ही रूपों में किया गया है, जिससे सरस उद्दीपन विभावों की सुन्दर सृष्टि हुई है।

बारहमासा वर्णन -

बारहमासा वर्णन में राजस्थानी लोककवियों ने किसी विशिष्ट एक मास से ही बारहमासा प्रारम्भ न कर, भिन्न-भिन्न मास से प्रारम्भ कर विभिन्न रूचियों का परिचय दिया है। इस तरह बारहमासा के प्रारम्भ में माह की दृष्टि से एक रूपता दृष्टिगत नहीं होती। हम भाद्रपद मास से ही बारहमासों में अभिव्यक्त वियोग श्रृंगार भावना का समीक्षण प्रस्तुत कर रहे हैं।

भाद्रपद मास- जिस दिन बंजर मरूप्रदेश के तपतपाते धोरों पर रिमझिम करती वर्षा की सरस एवं शीतल बूंदे पड़ती हैं, जिस सुहागरात की ममतामयी सन्ध्या को नीम की डाल पर बैठा मोर अपनी मधुर वाणी से 'पीव आव' 'पीव आव' कहकर हृदय की सुषुप्त वेदना जगा देता है, उसी दिन नायिका अपने नायक के विरह में तड़प उठती है। प्रेमी के मधुर मिलन की चाह बरसाती नदी की बाढ़ की तरह वेगवती होकर बहने लगती है।

भादू बरषा फुक रही घटा चढ़ी नभ जोर ।
कोयल कूक सुनावती बोले दादूर मोर ।
ओ जी सिरकार पपैओ पीव पीव शब्द सुनावे मेरे प्राण ।
चमचम चमके बीजुरी टप टप बरसे मेह,
भर भादूं बिलखत तजी भली निभायो नेह,
जी सरदार चतर चौमासे में घर आवो ओ जी मेरे प्राण ।।

विरहिणी नायिका उमड़ती घटाओं और चमकती बीजली से भरपूर भादों के ऐसे मादक मास में प्रिय विरह कैसे सहन कर सकती है ? वर्षा निरन्तर हो रही है, लेकिन मैं भयभीत हूं कि मेरा दृग-नीर निवारण करनेवाला निकट नहीं है । विरहिणी नायिका की भांति पपीहा पिउ पिउ की रट लगा रहा है जिससे मेरा तन विरह संतप्त हो उठा है और आनन्द क्षीण हो गया है । पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो गई है ऐसे 'भर भादो' में मुझे विरह में दग्ध होने के लिए रोती छोड़ कर परदेश चले गये । हे प्रियतम ! तुमने ऐसा करके प्रीत नहीं निभाई, अत: अपने प्रगाढ़ नेह को निभाने कम से कम चौमासे (चार मास) में तो घर आ जाओ । मेरे प्राण ! मेरे लिये चौमासा असह्य है ।

उमड़ती हुई घटाओं से घटाटोप अम्बर विरह व्यथित हो धरती से अपनी जलधारा रूपी भुजाओं द्वारा प्रेमालिंगन करता है तो राजस्थान के मरू प्रदेश में विरहिणी नायिकाओं का प्रिय की स्मृति रूपी आग में जलता हृदय चौगुना जलने लगता है । वर्षा की वे गोल गोल बूंदें आग में घी का काम करती हैं । उमड़ते यौवन की उन मदमाती एवं कसक भरी घड़ियों में वर्षा की बूंदों में अपने हृदयगगन से गरज कर नयनरूपी बदली से बरसते हुये गरम गरम आसूं मिलाकर गाती है -

लागे रे भंवरजी ! मेहूड़ा री छींटा
रावळी कटारी रा धाव
पधारो मारवण रा रसिया
मैलां जोऊं वाटड़ली ।

आश्विन मास-

इस मास में गगन की मेघ घटाएं प्राय: समाप्त हो जाती है ।

विमल तारा मंडल प्रकट हो जाते हैं, लेकिन वह भी विरहाग्नि से शरीर को दग्ध करते हैं। आश्विन-मासीय प्रकृति की पृष्ठभूमि में उद्दीप्त विरहिणी की 'उन्माद' दशा का बहुत ही सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है -

आसोजां में सीप ज्यों प्यारी करती आस
पिव पिव करती धण कहे प्रीतम आए न पास
जी उमराव इन्द्रजी ओलर ओलर आवे ओ जी मेरे प्राण ।
करूं कड़ाई चाव से तेरी दुरगा मांय
आसोजा में आय के जो प्रियतम मिल जाय
जी महारानी थारे सुवरन छत्र चढ़ाऊं मेरे प्राण ।।

आश्विन की जिन रातों में सागर की सीपों में मोती उत्पन्न होते हैं, वे मधुर रातें कंतहीन कामिनी की सुख से कैसे बीत सकती हैं ? वह तो अपने प्रियतम की आस में ही व्यथित है। संसार दशहरा मनाकर शक्ति रूपा दुर्गा की पूजा कर रहा है। विरहिणी दुर्गा माता से मनौती करती कहती है कि हे माता ! यदि तू मुझे इस मास में प्रियतम से मिलवा देगी तो मैं तेरे ऊपर सोने का छत्र चढ़ाऊंगी और बड़े चाव से तेरी मनौती पूरी करूंगी। हे महाराणा दुर्गा माता ! ऐसे समय में तू मुझे प्रिय से मिलादे। कितनी आर्त-वंदना है विरहिणी नायिका की।

कार्तिक मास -

प्रोषितपतिका नायिका नायक को उपालम्भ देती हुई कहती है कि हे प्रियतम ! तुम कठोर हृदय वाले तथा रूपयों पैसों के लोभी हो कि ऐसी सुन्दरी गोरी को विरह में तड़पती छोड़कर दूर जाकर बस गये हो। तुम्हें मेरे नाजुक एवं सौन्दर्य समन्वित रूप और यौवन की भी चिन्ता नहीं हैं, जो एक बार चला जायेगा तो पुन: आयेगा नहीं। तुम्हारे रूपये पैसे तो जीवन भर आते जाते रहेंगे। तुम्हारी प्यारी धण तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा में नित्य प्रति काग उड़ाती रहती है। श्रावण की तीज पर नहीं आये तो कम से कम दीपावली तो घर की करने आओ। मेरी सहेलियां सभी लक्ष्मी माता का पूजन अपने प्रियतम के साथ करके रात्रि में उनके साथ संभोग सुख का पर्व मनाती है। मैं अभागिन आपकी प्रतीक्षा में रातें गुजार रही हूं अब तो मेरे प्राण-धन ! घर आओ -

कातिक छाती कर कठिन पिया बसे जा दूर
लालच के बस होए के बिलखत छोड़ी हूर

जी उमराव धण थारी ऊभी काग उड़ावे मेरे प्राण ।
सखी सजोवे दीवला पूजे लक्ष्मी मात
रलमिल पौढ़े कामिनी ले प्रीतम ने साथ
जी उमराव सखी सब पिय संग मौज उड़ावे मेरे प्राण ।।

मगसर मास –

प्रिय की राह देखते देखते विरहिणी नायिका का जैसे तैसे दिन तो व्यतीत हो जाता है, लेकिन काली रात किसी भी प्रकार नहीं बीतती, उसे नींद नहीं आती और बैठे रहने पर पापी विरह तथा कामदेव उसे संतप्त करते है । ऐसी विरहदग्धा नायिका की तपन प्रियतम बिना कौन मिटाये ? मगसर मासोत्पन्न काम-व्यथा से संतप्त नायिका अपने प्राणप्रिय से घर आने का आग्रह करती हुई कहती है –

मगसर महीना में मेरे मन में उठे तरंग
अरध निशा में आन के मदन करत मोहे तंग
जी उमराव बिन कुण म्हारी तपन मिटावे मेरे प्राण ।।

मगसर मास में उमरती नदियों की बाढ़ शान्त हो गई है, लेकिन स्त्रियों में कामदेव की बाढ़ आ रही है अत: हे प्राणप्रिये ! आओ और तपन मिटाओ ।

अगहण मास –

विरहिणी नायिका की खीज और आक्रोश भाव को लेकर लोककवियों ने अनेक चित्र चित्रित किये हैं –

ना घर आवे पीवजी बीत गई बरसात ।
अगहन झूरे कामनी जोड़ो जहर खात ।
जी उमराव अब तो रितु सरदी की आई मेरे प्राण ।।

अगहन मास में उस विरहिणी को विरह और भी अधिक व्यथित करता है । उसे रात-रात भर नींद नहीं आती । कुछ सूझ नहीं पड़ता । वह अबला विरहिणी अब क्या करे ? क्या मर जावे ? कोई उपाय तो बताओ रे । आगमन की प्रतीक्षा में बरसात भी बीत गई । अबतो हे प्रियतम शरद ऋतु आई है । शीतल वायु बहने लगी है । तरूणी-तरूण आलिंगन पाश में आबद्ध हो गये हैं । अत: हे प्रिय आओ ।

पौष मास –

राजस्थान में शीतकाल भीतो अपने ढंग का अनूठा है । रेत के धोरे

जो गर्मी में आग उगलते हैं, वे सर्दी में कुंठित हो जाते हैं। रेत हिम सी बन जाती है। कड़कड़ाती सर्दी में प्रेमिका अपने प्रेमी के विरह में कट रही है। उत्तर दिशा से आने वाले प्रभंजन के ठंडे झोंके राजस्थान की धरती पर उगी हुई वनस्पति को भस्म कर देते हैं। पाला पड़ने लगता है। संयोगिनी नायिकायें सर्दी से बचाव अपने प्रेमियों से तपकर करती हैं। विरहिणियों के ताप तो परदेश में है। इसलिये उनका आह्वान करती है -

पोस जोस सरद तना जाड़ो पड़े अनन्त
दिलवर बसत दिसावरा बैठा होय नचन्त
जी सिरकार सरदी से जरदी तन छाई मेरे प्राण
ठंडी सेज हरवावती ठंडा बसन तमाम
पोस भई बेहोस में घर ना सिरका श्याम
जी उमराव सरद में घर आय कंठ लगाओ मेरे प्राण।

पौष मास में सर्दी अपने पूरे जोर से पड़ती है जिसकी कोई सीमा नहीं होती है। वह असह्य होती है। विरहिणी नायिका के पति सुदूर प्रदेश में निश्चिन्त होकर बैठे हैं। उन्हें क्या पता कि विरह-व्याकुला उनकी प्रिया पर क्या गुजर रही है? जीवन शून्य एवं नीरस तथा भार रूप लगने लगा है। विरह की व्यथा इतनी मार्मिक है कि शीत सहन करने में वह असमर्थ है और शरीर में ठिठुरती सर्दी के कारण जड़ता व्याप्त गई है। नायिका इतनी विरह व्याकुला हो गई है कि उसकी सेज एवं वस्त्र भी ठंडे हो गये हैं। अर्थात् उसके शरीर की सारी उष्मा समाप्त सी हो गई है और वह इस मास में बेहोश है। ऐसी विरह कातरा प्रिया को बचाने के लिये हे प्रिये शीघ्र घर आओ और अपने आलिंगन पाश में आबद्ध कर उसे जीवन दान दो।

माघ मास -

माघ के महीने में भयंकर तुषार-पात ने जल-थल को क्षार कर दिया है। वस्त्रों में वेष्टित देह भी जली जा रही है। मैं अकेली इस विरह व्यथा को कैसे सहूं? विरहिणी की कातर पुकार -

माघ मगन रहती परी, घर होते भरतार
पीव तो बसे विदेश में हिवड़े बहे कटार
जी उमराव अकेली दु:ख का दिल बिलाऊं मेरे प्राण।।

विरहिणी नायिका कल्पना करके अपने विरह व्याकुल हृदय को थोड़ी सान्त्वना

देती है - यदि इस माघ महीने में मेरे प्राण-पति घर होते तो मैं उनके सामीप्य सुख का पूरा पूरा लाभ लेकर अपने प्रियतम के ही प्रेम-पाश में तल्लीन रहती । इस तरह वह क्षणिक काल्पनिक सुख से सन्तोष करती है । परन्तु उसका पति तो परदेश है । अत: संयोग की सभी सुखद स्मृतियां आज हृदय में कटारी के घावों की तरह असहनीय प्रतीत हो रही हैं । सुख में तो दोनों सह-भागी रहे हैं और यह विरह के दु:ख को मैं कैसे अकेली वहन करूं ? इसलिये हे प्रियतम तुम आजाओ । प्रतीकात्मक रूप में काम की तीव्रता लिये हुये कहा गया है ।

फाल्गुन मास -

फाल्गुन मास में युगल दम्पतियों को होली खेलते देख विरहिणी अपने एकाकी मन के संदर्भ में मनोभावनाओं का प्रकटीकरण करते हुये कहती है -

आई बसंत संग की सखी सभी रंगावे चीर
मेरो सब रंग ले गयो बाईजी रो बीर
जी उमराव वसन्त में थारी नार विरंगी मेरे प्राण ।।

विरहिणी नायिका सोचती है कि रंग की पिचकारी भर वस्त्रों पर छांटने वाले प्रिय के बिना, मैं किसके साथ यह बसंत की होली खेलूं ? मेरे तो सभी रंग अर्थात् होली की गुलाल और पिचकारी के सभी रंग तो मेरी ननद के बीर मेरे प्रियतम परदेश ले गये हैं । फाल्गुन रंग का त्यौहार लेकर आ गया । चंग, मृदंग बज उठे । गुलाल से आकाश रंग गया, भामिनी और भरतार एक दूसरे पर रंग की पिचकारी चला रहे हैं । ऐसी वसंती होली में तेरी पत्नी विरंगी है, वह तेरे साथ होली खेलकर विविध रंगों वाली बनने की आतुरता में पिचकारी लिये खड़ी है । अत: तम अब तो आजाओ ।

षड्ऋतु वर्णन

वर्षा ऋतु -

जब मेघ गरजता है, बिजली चमकती है रिमझिम बूंदे बरसती है उस समय अपने प्रेम मंदिर के देवता को कौन पाषाण हृदया नारी सीख देगी ? लेकिन कर्तव्यपरायण पति परदेश जाने को उद्यत है । वह विरहिणी नायिका के हृदय को फोड़ निकलता है । अपने हृदय मंदिर के देवता को परदेश जाते देख प्रेयसी का हृदय टूक टूक हो गया । वह अपने प्रियतम को कहने लगी -

जे थे पन्ना मारू ओलंग जाय, वारी घण वारी ओ हंजा
वरज चढ़ोनी आभा वीजली ओ राज
वीजली घण वरजी न जाय वारी घण वारी ओ हंजा
सावण भादवो ऐ चमके बीजली जी राज
जे पन्ना मारू आलंग जाय वारी घण वारी ओ हंजा
वरज चढ़ो वन रा मोरिया जी राज
मोरला गोरी घण वरज्या ऐ न जाय वारी घण वारी ओ हंजा
आ रूतु बोलै ऐ मोरूला सुहावणा जी राज
जे थे पन्ना मारू आलंग जाय वारी घण वारी ओ हंजा
वरज चढ़ोनां ऐ बागां मायली कोयली जी राज
कोयलड़ी वरजी नं ऐ जाय वारी घण वारी ओ हंजा
वो बोले रूतु आयां आपरी जी राज
जे पन्ना मारू आलंग जाय वारी घण वारी ओ हंजा
वरज चढ़ो नी पड़ोसण को दिवलो जी राज
पड़ोसण को दिवलो न वरज्यो जाय वारी घण वारी ओ हंजा
वां का परण्या घर बसै जी राज
जे थे पन्ना मारू ओलंग जाय वारी घण वारी ओ हंजा
विष को प्यालो थारी घण ने दे चढ़ो जी राज ।

मेरे घनश्याम । तुम जा रहे हो पर अम्बर में उठी काली घटाओं में चमकने वाली बीजली तुम्हारे चले जाने के बाद अपनी चमक से मुझे घायल कर देगी । कह जाओ कि वह न चमके । इन मयूरों को आदेश दे जाओ कि वे तुम्हारी वियोगिनी की व्यथा को दुगनी करने को न बोलें । पड़ौसिन को कह जाओ - अपनी चित्र सारी में दीपक न जलाए । उसे देखकर मैं जल मरूंगी । इन सभी बातों को तुम न कर सको तो एक बात तो अवश्य करो । अपनी प्रियतमा को अपने हाथों से विष का प्याला दे दो । प्रति उत्तर में पति कहता है प्रिये । सावन-भादों में बीजली का चमकना, मयूरों का बोलना उनका अपना नैसर्गिक कार्य है । पड़ौसिन के पति घर पर है । अत: दीपमालिका से घर को जगमगाना उसका धर्म है । तुझे पीने के लिये जहर नहीं दूध है । जहर तो दुश्मन को दिया जाता है ।

राजस्थान में श्रावणी तीज का बड़ा महत्व है। पति चाहे कितने ही दूर प्रवास में जाता हो, लेकिन श्रावणी तीज पर आने का वचन दे जाता है। यदि संयोगवशात् नहीं आ पाता है तो विरहिणी नायिकायें वर्षा ऋतु को नहीं बरसने का अनुरोध करती है। क्योंकि वर्षा ऋतु विरहीजनों को विशेष रूप से सालती है। साथ ही प्रिय के समीप आने का निमन्त्रण भी देती है। इसी भावना से अनुप्राणित यह गीत है -

अबै घर आवो हो म्हारा बाईसा रा बीर
इन्दर घहुके धरती नीपजै
करसा मांगे हो राजनोमी धोराला खेत
हालीड़ो मांगे हालीपो। अबै घर आवो --------

विरह में व्यथित गोरी अपने प्रियतम को घर आने के हेतु पत्र लिख रही है -

सावण तो लाग्यो पिया भादवो
बरसण लाग्यो मेह
छपर पुराणा पिया पड़ गया तिड़कन लाग्या - बांस
बादळ में चमके पिया बीजळी
मेंला में डरपे घर नार
असी तो टकां री ढोला चाकरी
लाख टकां री नार
अब घर आजो गोरी रा साहिबा।

वर्षा ऋतु में राजस्थान का प्राकृतिक सौन्दर्य कई गुना बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में नायिका अपने नायक के विरह में तड़प उठती हैं जिसकी अभिव्यक्ति गीतों में फूट निकलती है -

मेरो मन मारूजी मिलबा नै
जेठ असाढ आसा सूं काढ्या तो सावण आयो फुरबा नै
मेरो मन मारूजी मिलबा नै
पहलो पख सावण को लाग्यो तो लाग्यो भादवो उड़बा नै
मेरो मन मारूजी मिलबा नै
पूरब दिसा सूं उठी बादली तो आयी घटा बरसबा नै
मेरो मन मारूजी मिलबा नै

नान्ही नान्ही बूंदा मेवड़ो बरसे, तो लागी बादली गरजबा ने
मेरो मन मारूजी मिलबा ने
लिख परवाणुं म्हारे मारूजी ने देस्यां
तो एक बार आवो पिव मिलबा ने
मेरो मन मारूजी मिलबा ने ।

नायिका का मन प्रियतम से मिलने के लिये उत्सुक हो रहा है । जेठ और आषाढ़ मैंने आशा करते हुये व्यतीत किये । अब श्रावण मानो रोने आया है । श्रावण का पहला पखा लगा और भादवा भी व्यतीत होने लगा । पूर्व दिशा से बदली उठी और मेरे घर बरसने के लिये आ गई । मेह छोटी छोटी बून्दों में बरसने लगा है और बादली गर्जना करने लगी है । मेरा मन प्रियतम को मिलने के लिये उत्सुक है । मैं पत्र लिख कर प्रियतम को दूंगी । प्रियतम, एकबार मिलने के लिये आजाओ ।

शरद ऋतु -

वर्षा की तरह शरद ऋतु में भी नायिका अपने प्रियतम को याद करती है । हर ऋतु की अपनी अपनी विशेषता होती है । नायिका कहती है - हे प्रियतम ! सर्दी जारों से पड़ रही है । वन के मोर मर रहे हैं । पड़ौसन का पति घर आ गया है और दोनों प्रेमी बड़े प्रेम से रंगमहल में शराब पी रहे हैं । इस ऋतु में आपभी घर आ जाओ -

संघाणो लाडूड़ा बांधिया ओ राज
किस-मिस घाल बदाम
जीमण ने केसरिया बालम जी ओ
सियाले घरे पधार
ऐ जी पधारो नी म्हारा भरतार
मैल सुनो उनमणों ।।

हे प्रियतम ! तुम्हारे लिये किसमिस और बादाम डालकर लड्डू तैयार किये हैं । तुम उन्हें जीमने मेरे प्रियवर घर आओ । आज तुम्हारे विरह में मेरा यह पाषाणों का बना हुआ महल उदास है ।

बिलखा गोरी रा गोखड़ा
फबके ओलू कर सेज
पधारो गोरी रा घनश्याम

रैण सूनी लागे सा
लागे मैल सूनो ऊमणो ।।

जिन झरोखों पर हम-तुम बैठ कर मीठी मीठी बातें करते थे आज बिलखने से दृष्टिगत होते हैं । प्रियवर । मेरे साथ यह सेज भी तुम्हारे विरह में रोती सी दृष्टिगत होती है । हे गोरी सुन्दरी के श्याम । अब तो सर्दी पड़ रही है । तुम घर पर पधारो ।

हेमन्त-शिशिर ऋतु -

इस ऋतु में राजस्थान में अत्यंत शीत भरी उत्तरी वात चलती है जिससे पेड़ पौधे झुलस जाते हैं । असह्य सर्दी में दादुर-मोर मारे गये हैं । ऐसे जाड़े को बाईसा, मैं कैसे सहन करूंगी -

जाड़ो तो पड़े जी बाईसा म्हारा डूंगरां
मार्‌या मार्‌या दादर मोर किस विध भुगतूं जी
बाईसा म्हारा जाड़ा ने
जाड़ो तो पड़्यो जी बाईसा म्हारा बाग में
कोई मार्‌या छै मालो लोग,
किस विध भुगतूं जी बाईसा म्हारा ।
जाड़ो तो पड़्यो जी बाईसा म्हारा शहर में
मार्‌या मार्‌या महाजन लोग
किस विध भुगतूं जी बाई सा म्हारा जाड़ा ने
जाड़ो तो पड़्यो जी बाईसा म्हारा महलां में
मार्‌या मार्‌या राजन लोग
किस विध भुगतूं जी बाईसा म्हारा जाड़ा ने ।

वसंत ऋतु -

विरहिणी नायिका सोचती है कि रंग की पिचकारी मुझ पर छांटने वाले प्रियतम के बिना, मैं कैसे रहूं ?

माह महनो वसंत पंचमी घरघर वसंत छावे रे
राधा ऊभी दुआर उधो अगिन जलावे रे
फागन महने बनगये रसिया घरघर फाग मनावे रे
राधा को तन सूख्यो, उधो जलभर पिचकारी लावे रे

फाल्गुन रंग का महीना है । सभी होली के रंग में निमग्न है लेकिन विरहिणी राधा के लिये इसका सौन्दर्य कष्टदायक है ।

इसी तरह एक अन्य गीत में विरहिणी नायिका कहती है -

फागण फीको ए सहेल्यां । एक स्याम बिना फागण फीको अे ।

नायक नायिकाओं के विरह में इनके बोये हुये आम, नीम्बू और पीपली आदि पेड़-पौधे भी उद्दीपन का कार्य करते हैं । नायिका आंगन में लगी पीपली को स्वयं का प्रतीक मान लेती है । इसी प्रकार आम और नीम्बू के पेड़ पौधे फल फूलकर नायिका के यौवन-विकास की सूचना देते हैं । विरही-जनों के लिये ऐसे पेड़ पौधों का फलना, फूलना असह्य हो जाता है और उनके उद्गार गीतों में फूट पड़ते हैं । उदाहरणार्थ गीत दृष्टव्य है -

बाय चाल्यां छा भंवरजी । पीपलीजी
हां जी ढोला । होगई घेर घुमेर ।[१]

---

१. परिशिष्ट गीत संख्या १०४